मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 50 ● वर्ष 6, अंक 3 ● मई 2016 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

पनामा पेपर्स मामला : पूँजीवादी पतन का एक प्रतिनिधि उदाहरण 7

'आधार' – जनता के दमन का औज़ार 5

कश्मीर : आओ देखो गलियों में बहता लहू 11

मोदी सरकार और संघ परिवार के नापाक मंसूबे दो साल में ही नंगे हो चुके हैं

देश को ख़ूनी दलदल या ग़ुलामों के कैदख़ाने में तब्दील होने से बचाना है तो एकजुट होकर उठ खड़े हो!

मोदी सरकार के दो वर्षों में ही इसकी कलई एकदम आम लोगों के सामने भी पूरी तरह खुल चुकी है। आम चुनाव में लोगों को ठगने के लिए किये गये 'सबका साथ सबका विकास' के दावे हवा हो चुके हैं और जनता के बुनियादी अधिकारों की कीमत पर लुटेरे पूँजीपतियों के हक़ में सारे फ़ैसले लिये जा रहे हैं। जनता के बढ़ते असन्तोष को तितर-बितर करने और लोगों का ध्यान बँटाने के लिए देशभर में धर्म, जाति और क्षेत्रीयता के नाम पर नफ़रत फैलाने और दंगे कराने का खुला खेल खेला जा रहा है। हर बीतते दिन के साथ मोदी सरकार और संघ परिवार के नापाक मंसूबे नंगे होते जा रहे हैं।

ये हालात मेहनतकशों के लिए आने वाले ख़तरनाक दिनों की ओर इशारा कर रहे हैं और हमें चेतावनी दे रहे हैं कि अगर हमने एकजुट होकर जुझारू ढंग से इन हमलों का मुकाबला नहीं किया तो ये फासिस्ट या तो इस देश को ख़ून के दलदल में डुबो देंगे या फिर एक ऐसे जेलखाने में तब्दील कर देंगे जहाँ सिर्फ़ सिर झुकाकर, आँख-मुँह पर पट्टी बाँधकर धन्नासेठों और बर्बरों की ग़ुलामी करने के सिवा लोगों के पास कोई चारा नहीं होगा। हालाँकि कुछ लोग अभी भी इस ख़ुशफ़हमी में जी रहे हैं कि बस तीन साल इन्तज़ार करने की बात है, 2019 के चुनाव में जनता इन्हें सत्ता से उतार देगी और फिर सुख-चैन के दिन आ जायेंगे। ऐसा सोचकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना बहुत बड़ी भूल होगी। इतिहास गवाह है कि फासिस्टों को चुनाव से शिकस्त नहीं दी जा सकती। इन्हें छुट्टा छोड़ दिया गया तो ये सत्ता में बने रहने के लिए कोई भी विनाशकारी क़दम उठा सकते हैं।

आज हालत ऐसी बना दी गयी है कि जो भी सरकार के ग़लत क़दमों के ख़िलाफ़ आवाज उठाये वह देशद्रोही है और जो भी सरकार की हर बात में सिर हिलाये वही देशभक्त है। तरह-तरह की गुण्डावाहिनियों को सड़क पर खुला छोड़ दिया है कि वह ऐसे सभी 'देशद्रोहियों' को सबक सिखायें जो कि मोदी और संघ परिवार की हाँ में हाँ न मिलाते हों! लेकिन ज़रा सोचिये! देशभक्ति के इस गुबार में आम जनता की ज़िन्दगी के ज़रूरी मुद्दों को ढँक देने की कोशिश हो रही है। दाल, सब्ज़ी, दवाएँ, शिक्षा, तेल, गैस, किराया-भाड़ा, हर चीज़ की कीमतें आसमान छू रही हैं और ग़रीबों तथा निम्न मध्यवर्ग के लोगों का जीना मुहाल हो गया है। नरेन्द्र मोदी का पाखण्डी मुखौटा तार-तार हो चुका है। देश ही नहीं, विदेशों में भी उसकी फ़जीहत हो रही है और संघ परिवार द्वारा फैलाये जा रहे घृणा के वातावरण की कड़ी आलोचना हो रही है। लेकिन पीछे हटने के बजाय वे और भी बेशर्मी के साथ गुण्डई पर आमादा हैं। बिका हुआ कारपोरेट मीडिया उनका भोंपू बना हुआ है। इसके जरिये वे तमाम प्रगतिशील, जनवादी और जनपक्षधर ताक़तों को अन्धाधुन्ध झूठे प्रचार के जरिये देशद्रोही करार देकर उनका मुँह बन्द करना चाहते हैं।

जो आज़ादी के आन्दोलन के ग़द्दार थे और जिन्होंने अंग्रेजों के ख़िलाफ़फ कभी एक ढेला तक नहीं चलाया वही आज देशभक्ति का सर्टिफिकेट बाँटने में लगे हैं। जिनके नेताओं ने अंग्रेज़ों के लिए मुखबिरी करने, माफ़ीनामे लिखने और रानी को सलामी देने का काम किया था वे आज लोगों के हक़ की बात करने वालों को देशद्रोही कह रहे हैं? जब देश के हिन्दू, मुस्लिम, सिख सभी मिलकर अंग्रेज़ों से लड़ रहे थे तब भी आरएसएस मुसलमानों के विरुद्ध लोगों को भड़काकर आपसी एकता तोड़ने और गोरों की मदद करने का काम कर रहा था। आज भी मोदी सरकार विदेशी लुटेरी कम्पनियों के साथ देश बेचने वाले समझौते कर रही है, अमेरिका के आगे घुटने टेककर देश के हितों के सौदे कर रही है और विजय माल्या और ललित मोदी जैसे देशी चोरों को देश का पैसा लेकर विदेश भाग जाने में मदद कर रही है। ये किस मुँह से देशभक्ति की बात करेंगे?

इतिहास गवाह है कि जर्मनी में हिटलर ने भी ठीक इसी तरह झूठे आरोप लगाकर पहले हर उस आवाज़ को चुप कराया जो उसका विरोध कर सकती थी और फिर जनता को लूटने और पीस

(पेज 10 पर जारी)

सम्पादक मण्डल

भविष्य निधि पर गिद्ध दृष्टि डालने वाली मोदी सरकार के ख़िलाफ़

बेंगलुरु की स्त्री गारमेंट मज़दूरों ने संभाली कमान, सरकार को झुकाया

पिछली 18 अप्रैल को बेंगलूर के सैकड़ों रेडीमेड कपड़ों के कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों की विशाल संख्या सड़कों पर उतर आयी। उन्होंने बेंगलूर की सबसे महत्वपूर्ण सड़कों में से एक, होसुर रोड को घंटों तक जाम कर दिया। ये वही सड़क है जो बेंगलूर की इलेक्ट्रॉनिक सिटी तक जाती है जहाँ तमाम सॉफ़्टवेयर और आयीटी कम्पनियों के आलीशन दफ़्तर हैं। भारी संख्या में सशस्त्र पुलिस बल के बर्बर दमन के बावजूद मज़दूरों ने पुलिस से डटकर मोर्चा लिया। ग़ुस्साये मज़दूरों ने पुलिस थानों पर हमला किया और कई बसों को भी आग लगा दी। मज़दूरों के उग्र आन्दोलन के आगे सरकार को घुटने टेकने पड़े और यह घोषणा करनी पड़ी कि प्रोविडेंट फ़ंड (पी.एफ़.) के नियमों में होने वाले बदलाव वापस ले लिये जायेंगे। इस आन्दोलन ने मज़दूरों के अधिकारों पर लगातार हमले कर रही मोदी सरकार के मज़दूर-विरोधी इरादों पर करारी चोट की है।

बेंगलूर के गारमेंट मज़दूरों में करीब 85 प्रतिशत स्त्रियाँ हैं और इस आन्दोलन में भी सबसे बड़ी तादाद में स्त्रियाँ ही थीं और अगुवाई भी उन्हीं के हाथों में थी। इसने एक बार फिर साबित किया कि स्त्रियाँ अगर अपने हक़ के लिए जाग उठें तो ज़बर्दस्त जुझारू ढंग से लड़ती हैं और दमन-उत्पीड़न भी उनके हौसलों को तोड़ नहीं पाता। 18 अप्रैल को मज़दूरों की बग़ावत अचानक भड़क उठने की शुरुआत इस ख़बर से हुई कि सरकार के नये नियम के तहत मज़दूर अपने पी।एफ़ से कारख़ाना मालिक के अंशदान वाली रकम 58 वर्ष की उम्र से पहले नहीं निकाल सकेंगे। लेकिन आन्दोलन के इतना उग्र रूप धारण करने और देखते-देखते लाखों मज़दूरों को समेट लेने के पीछे सिर्फ़ यही बात नहीं थी। इसे समझने के लिए हमें बेंगलूर और देश के करोड़ों गारमेंट मज़दूरों के हालात पर नज़र डालनी होगी।

नरक जैसे हालात में काम करते भारत के गारमेंट मज़दूर

देश के हर बड़े शहर में खुले जगमगाते मॉलों के शोरूमों में सजे ब्रांडेड कपड़े दिखने में बड़े सुन्दर और ललचाने वाले लगते हैं पर इनके रंगों की चमक मज़दूरों के आँसुओं और ख़ून से आती है। अगर आपको विश्वास न हो रहा हो तो आइये एक सरसरी निगाह डालते हैं वस्त्र उद्योग पर, जिससे हमारी

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

हरियाणवी रागणी

मई दिवस

मई दिवस पुकार रह्या तू सुण मज़दूर-किसान
होस म्हं आइये रै…

अधिकारां नै ख़त्म करै यू, पूँजीवाद बदमास घणा।
कुछ सालां म्हं पूँजीवाद नै, कर दिया देखो नास घणा।
पर्दा होग्या फास घणा, घट्या म्हैनत का सम्मान।
होस म्हं आइये रै...

बारा घण्टे हाड पिटाई, जुल्म लगे इब होण द्यखे।
निजीकरण यो लाग रह्या सै, बीज बिघन के बोण द्यखे।
क्यूँ लगे नींद म्हं सोण द्यखे, म्हारा लुट ग्या हिन्दुस्तान
होस म्हं आइये रै...

शिकागो के म्हं धार खून की, मज़दूर लड़े थे अड़कै रै।
काम के घण्टे आठ और मज़ूरी, अधिकार लिये थे लड़कै रै।
इब हक़ म्हारा हड़कै रै, मोटे होगे बेईमान।
होस म्हं आइये रै...

लुटेरां गेल्यां जंग होवै, इब और नहीं कोय चारा सै।
इज्ज़त सेत्ती जीणा सीखो, जो अधिकार हमारा सै।
इन्क़लाब का नारा सै अर झण्डा लाल निशान।
होस म्हं आइये रै...

रामधारी सुण खटकड़िये, तनै देस जगाणा होगा रै।
मज़दूर-किसान-करमचारी, कुछ ठाणा ठाणा होगा रै।
जोश म्हं गाणा होगा रै, तू ऊँची कर ले तान।
होस म्हं आइये रै...

मई दिवस पुकार रह्या तू सुण मज़दूर-किसान
होस म्हं आइये रै

— रामधारी खटकड़, जीन्द, हरियाणा

(घणा - ज़्यादा, बिघन - विनाश, द्यखे – देखिये, अड़कै - अड़कर मुकाबला करना, हड़कै - हड़प कर, गेल्यां - के साथ, सेत्ती – के लिए, ठाणा ठाणा – पहले ठाणा का अर्थ ज़िम्मेदारी और दूसरे ठाणा का अर्थ है उठाना)

आपस की बात

सब मज़दूरों के हित एक जैसे हैं, और मालिकों के एक जैसे!

मज़दूर भाइयो, मैं हरियाणा के पानीपत शहर में रहता हूँ। मेरी उम्र तेईस साल है और यहाँ तीन साल से एक रेडीमेड कपड़े की दुकान पर नौकरी कर रहा हूँ। मेरा जन्म ग्रामीण क्षेत्र में हुआ और वहीं मेरा बचपन बीता। मेरा जन्म एक रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में हुआ लेकिन मेरे पिताजी पूजापाठ और कर्मकाण्ड की बजाय हमारी छोटी सी ज़मीन पर खेती ही करते थे। कुछ ज़मीन तो हमारी अपनी थी और कुछ ठेके पर लेते थे लेकिन पानी की दिक्कत थी, खेती से गुजारा नहीं हो रहा था हर साल नुकसान ही उठाना पड़ता था।

लगभग 2003 में पिताजी अपनी थोड़ी सी ज़मीन को ठेके पर देकर पानीपत आ गये और एक फैक्टरी में नौकरी करने लगे। और थोड़े दिनों बाद हमारा पूरा परिवार ही पानीपत आ गया। तब तक मैं सातवीं कक्षा में हो चुका था। घर के हालात के कारण पढ़ाई का भी नुकसान हो रहा था। देर-सबेर हमें भी पिताजी के साथ लगना ही था जिससे कि परिवार को आर्थिक मदद मिल सके। बड़े भाई उस समय नौवीं कक्षा में थे उन्होंने उसी समय से फैक्टरी में काम करना शुरू कर दिया था और पढ़ाई ओपन से जारी थी। पैसे की दिक्कत के कारण वे बड़ी मुश्किल से दसवीं कर पाये। जैसे ही मैं स्कूल से आता तो घर पर होने वाले पीस रेट के काम में हाथ बँटाता जैसे कि धागे की गाँठों को सुलझाना या चद्दर की गाँठें बाँधना। मेरी माँ भी लगी रहती और उन्हें घर के काम भी करने पड़ते थे।

मैंने भी आर्थिक तंगी के चलते 12वीं के बाद पढ़ाई छोड़कर काम करना शुरू कर दिया। काम के दबाव के कारण हमारा परिवार अधिकतर समय बीमार ही रहता था। मेरे पिताजी को फैक्टरी में जबरन ओवरटाइम करना पड़ता था। 10 घण्टे की शिफ्ट होती थी और दो घण्टे अतिरिक्त काम के कोई पैसे भी नहीं मिलते थे। यहाँ पर अब भी यही हाल है। फैक्टरी भी 13 किलोमीटर दूर थी जहाँ उन्हें साइकिल से जाना पड़ता। अपना मकान बनाने के चक्कर में हम कर्ज़ में डूब गये जिस कारण हमें दिन-रात मेहनत-मशक्कत करनी पड़ी और फैक्टियों में खटना पड़ा। हम दोनों भाइयों की शादियों में परिवार पर फिर कर्ज़ चढ़ गया। अब मैं, मेरा भाई और पिताजी तीनों काम करते हैं और फिर भी ढंग से खर्च नहीं चला पाते। लेकिन शहर में रहकर और जीवन के लिए संघर्ष करके मुझे यह एहसास ज़रूर हुआ कि काम करने वालों के हक़-अधिकार एक जैसे होते हैं और मालिकों के हित एक जैसे होते हैं चाहे फिर वे किसी भी जाति और धर्म के क्यों न हों। खान-पान को लेकर बनी सोच और ऊँच-नीच के तमाम विचार अब मेरे लिए कोई मायने नहीं रखते। मुझे दुकान पर जहाँ काम करते हैं वहीं एक साथी के माध्यम से भगतसिंह के विचारों के बारे में और मज़दूरों के अधिकारों के बारे में जानकारी मिली।

'मज़दूर बिगुल' आज मज़दूरों के लिए बहुत बढ़िया काम कर रहा है यह मज़दूरों को उनके हक़-अधिकारों के लिए सही ढंग से लड़ने की प्रेरणा देता है, एकता कायम करने की बात करता है और देश-दुनिया के मज़दूरों के हालात की जानकारी देता है और मज़दूरों के शोषण से रहित व्यवस्था कायम करने की बात करता है। मुझे बिगुल अख़बार का बेसब्री से इन्तजार रहता है और अपने दोस्तों के दायरे में भी मैं अखबार के बारे में बताता हूँ। मैं अपनी मार्किट के सेल्समैनों से भी बात करता रहता हूँ पर आमतौर पर वे अपनी कम चेतना के चलते, और नौकरी छूट जाने के चलते आगे नहीं आ पाते। किन्तु लगातार बातचीत के कारण और अपने काम करने के हालात के चलते कुछ-कुछ चीज़ों को समझने भी लगे हैं तथा धीरे-धीरे जागृति आ रही है। मुझे उम्मीद है बिगुल अखबार इसी तरह से देश के मज़दूरों को शिक्षित करता रहेगा।

— प्रवेश शर्मा
पानीपत, हरियाणा

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **- लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरणः Mazdoor Bigul
खाता संख्याः 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यताः वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन : 8853093555, 9936650658
ईमेलः bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

दिल्ली सचिवालय पर घरेलू कामगारों का जुझारू प्रदर्शन

दिल्ली के श्रम मन्त्री ने श्रम आयुक्त से उनकी माँगों पर 15 दिन के अन्दर स्टेटस रिपोर्ट माँगी

दिल्ली के सैकड़ों घरेलू कामगारों ने दिल्ली सरकार के सचिवालय पर एक जुझारू प्रदर्शन किया और उनके प्रतिनिधिमंडल ने दिल्ली राज्य के श्रम मन्त्री को अपनी माँगों का ज्ञापन सौंपा।

श्रम विभाग में अनिवार्य पंजीकरण, न्यूनतम वेतन, कार्यदिवस, साप्ताहिक छुट्टी एवं अन्य अवकाशों का निर्धारण, स्वास्थ्य और दुर्घटना बीमा, पी।एफ़।, पेंशन, ई।एस।आयी। एवं सामाजिक सुरक्षा के अन्य प्रावधान आदि घरेलू कामगारों की प्रमुख माँगें थीं। उनका कहना था कि यथाशीघ्र क़ानून बनाकर सरकार को ये माँगें पूरी करनी चाहिए तथा घरेलू कामगारों से जुड़ी स्कीमों के वित्त-पोषण के लिए 'घरेलू कामगार कल्याण कोष' की स्थापना की जानी चाहिए।

प्रदर्शन-स्थल पर सभा को सम्बोधित करते हुए 'दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन' की संयोजक कविता ने कहा कि घरेलू मज़दूर मेहनतकशों के बीच का सबसे अधिक उपेक्षित, सबसे अधिक उत्पीड़ित, सबसे अधिक असंगठित, क़ानूनी तौर पर अरक्षित और अदृश्य-प्राय हिस्सा है। केन्द्र और राज्यों की सरकारों ने घरेलू कामगारों के साथ लगातार छल और विश्वासघात किया है। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने 2013 में घरेलू कामगारों से सम्बन्धित कंवेंशन पारित किया, लेकिन भारत सरकार ने अभी तक उसका अनुमोदन नहीं किया है। घरेलू कामगारों के लिए क़ानून के दो विधेयक 2008 और 2010 में सरकार के सामने रखे गये, पर सरकार ने या संसद में बैठी किसी पार्टी ने ऐसा क़ानून बनाने की दिशा में कोई पहल नहीं ली। यही हाल राज्यों की सरकारों का रहा है। केवल तमिलनाडु, महाराष्ट्र, केरल, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश और राजस्थान की सरकारों ने कुछ बेहद कमजोर क़ानूनी प्रावधान करके या नोटिफ़िकेशन जारी करके घरेलू मज़दूरों को पंजीकरण, न्यूनतम वेतन और अवकाश की सुविधाएँ देने जैसी घोषणाएँ की हैं, लेकिन ज़मीनी स्तर पर इन पर भी अमल नहीं हो रहा है। दिल्ली देश की राजधानी है, लेकिन यहाँ के घरेलू मज़दूरों को कोई भी सुरक्षा प्राप्त नहीं है। अब समय आ गया है कि इसके लिए एकजुट होकर आवाज़ उठायी जाये और आन्दोलन खड़ा किया जाये, तभी सरकार की कुम्भकर्णी नींद टूटेगी। संघर्ष के बिना हमें अपना हक़ क़तई नहीं हासिल होगा।

यूनियन की संयोजन समिति की सदस्य विमला सक्करवाल ने कहा कि घरेलू कामगारों के लिए क़ानून बनाने के लिए सरकार यदि जल्दी-से-जल्दी कोई विशेष कमेटी की घोषणा नहीं करती है और सदन के आगामी सत्रों में इसके लिए विधेयक पेश करने की घोषणा नहीं करती है तो हमें पूरी दिल्ली में अपना आन्दोलन तेज़ करना होगा। सरकार तब तक इतना तो कर ही सकती है कि आधिकारिक तौर पर घरेलू मज़दूरों को असंगठित मज़दूरों की श्रेणी में रखकर, असंगठित मज़दूरों को जो भी थोड़े-बहुत क़ानूनी अधिकार हासिल हैं, उनका अधिकारी घरेलू मज़दूरों को भी बना दे। क़ानून बनने तक नोटिफ़िकेशन और शासनादेशों के द्वारा भी पंजीकरण, न्यूनतम मज़दूरी, सुनिश्चित कार्यदिवस, अवकाश आदि के अधिकार घरेलू मज़दूरों को दिये जा सकते हैं, जैसा कि कुछ राज्य सरकारों ने किया भी है।

यूनियन की संयोजन समिति के अन्य सदस्य अपूर्व मालवीय ने कहा कि हमें इन माँगों को लेकर संगठित होकर, एक लम्बी लड़ाई चलानी होगी और राज्य के साथ ही केन्द्र की सरकार पर भी दबाव बनाना होगा कि वह केन्द्रीय स्तर पर यथाशीघ्र घरेलू मज़दूरों के लिए क़ानून बनाये और उसके अनुरूप क़ानून बनाने के लिए राज्य सरकारों पर दबाव बनाये। हमारी कोशिश है कि अन्य राज्यों में भी घरेलू कामगारों को संगठित किया जाये और उन सभी के एकीकृत आन्दोलन द्वारा केन्द्र सरकार पर भी दबाव बनाया जाये। उन्होंने कहा कि सभी मज़दूर एकजुट होकर, एक-दूसरे का साथ देकर ही अपनी लड़ाइयों को कामयाब बना सकते हैं, इसलिए ज़रूरी है कि घरेलू मज़दूर सभी असंगठित मज़दूरों के संघर्षों में उनका साथ दें और अपने आन्दोलनों में उन्हें साथ लें। हमें 'मज़दूर एकता ज़िन्दाबाद' के नारे को कभी भूलना नहीं चाहिए।

अपूर्व मालवीय ने घरेलू मज़दूरों की सभी माँगों का औचित्य बताते हुए तफ़सील से यह समझाया कि किस प्रकार विलासिता व अमीरी की चीज़ों की ख़रीद पर उपकर (सेस) लगाकर 'घरेलू श्रमिक कल्याण कोष' बनाकर सरकार घरेलू मज़दूरों के पी।एफ़।, पेंशन, दुर्घटना बीमा, ई।एस।आयी।, आदि माँगों को आसानी से पूरा कर सकती है। उन्होंने कहा कि क़ानून बनने के साथ ही श्रम विभागों में ऐसी व्यवस्था और ऐसा मेकेनिज़्म बनाना होगा कि उक्त क़ानून पर प्रभावी अमल की गारण्टी हो सके। हमें घरेलू मज़दूरों के लिए क़ानून ही नहीं, बल्कि उसके प्रभावी अमल के लिए भी एक लम्बी

(पेज 10 पर जारी)

लुधियाना के तीन कपड़ा मज़दूरों की दर्दनाक मौत का ज़िम्मेदार कौन ?

मुनाफे की खातिर मज़दूरों की हत्याएँ आखिर कब रुकेंगी ?

6 मई 2016 की रात 2 बजे तीन मज़दूर बाजड़ा रोड, मेहरबान, लुधियाना पर स्थित ज्ञानचन्द डाइंग (इसे गुलशन हौज़री भी कहते हैं) में भड़की आग में झुलस कर मारे गये! मारे जाने वाले आशुतोष बण्टी झा की उम्र 28 वर्ष थी और उसकी तीन महीने की बच्ची है। सतीश राऊत की उम्र 25 थी और उसके तीन और दो वर्ष के बच्चे हैं। 21 वर्ष के भोला पर अपने परिवार की बड़ी जिम्मेदारी थी। काफी विरोध होने पर दो-दो लाख रुपए की नाममात्र मदद का भरोसा देकर फैक्ट्री मालिक ने सदमे का शिकार पीड़ित परिवारों का मुँह बन्द कर दिया। पुलिस ने मामले को रफा-दफा करने के लिए हर प्रकार से फैक्ट्री मालिक की मदद की। इतनी भयानक घटना के बाद मालिक, मैनेजर व अन्य जिम्मेदार लोगों की तुरन्त गिरफ़्तारी और मज़दूरों की मौत के कारणों की जाँच-पड़ताल होनी चाहिए थी। मगर पुलिस ने मालिक को बचाने के लिए काम किया।

ज्ञानचन्द डाईंग/गुलशन हौज़री का वह जलकर राख हुआ हॉल जहाँ तीन मज़दूर की मौत हुई। हॉल से निकलने का एक ही रास्ता था जहाँ भयानक आग की लपटें उठ रही थीं। मज़दूर चीखते-चिल्लाते रहे लेकिन उन्हें बचाने वाला कोई न था। मालिक मेन गेट को ताला लगाकर अपने बँगले के ए.सी. कमरे में सो रहा था।

रात में घटना के बाद ही कारखाने में और आस-पास के बड़े इलाके में सैकड़ों की संख्या में पुलिस तैनात कर दी गयी। लाशें तुरन्त सिविल अस्पताल पहुँचा दी गयीं। इस तरह मज़दूरों के आक्रोश से निपटने के लिए पहले ही पूरे प्रबन्ध कर लिये गये। टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन व कारखाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में कारखाना मालिक व श्रम अधिकारियों पर कार्रवाई व पीड़ित परिवारों को उचित मुआवज़े की माँग कर रहे मज़दूरों पर लाठीचार्ज हुआ, मज़दूर नेता लखविन्दर को गिरफ़्तार करने की कोशिश हुई। पुलिस, मालिक, ठेकेदारों, मालिकों के अन्य दलालों ने सदमे का शिकार पीड़ित परिवारों पर तरह-तरह से समझौते के लिए दबाव बनाया और 174 की धारा के तहत सारा मामला रफा-दफा करवा दिया। मदद के नाम पर महज दो लाख दिये गये। यूनियन ने बीस लाख मुआवजे की माँग की थी। यूनियन के आने से पहले सिर्फ बीस हजार मुआवज़े की बात हो रही थी। जब यूनियन के नेतृत्व में धरना लगा, नारेबाजी हुई तो तुरन्त मालिक दो लाख पर आ गया। अगर पीड़ित परिजन डटे रहते तो इतना तय है कि हज़ारों मज़दूर उनके साथ खड़े होते और इससे कहीं ज़्यादा मुआवजा मिल सकता था व मालिक के खिलाफ़ कार्रवाई भी करवाई जा सकती थी। इससे अन्य पूँजीपतियों पर भी कारखानों में सुरक्षा के इंतजाम करने का बड़ा दबाव बनता। लेकिन पूँजीपति व पुलिस ऐसा हरगिज़ नहीं चाहते थे और इसमें वे कामयाब हुए। चुनावी पार्टियों का मज़दूर विरोधी चरित्र इस मामले ने भी नंगा कर दिया। किसी भी भाजपाई, कांग्रसी, अकाली य अन्य किसी चुनावी पार्टी के नेताओं ने मज़दूरों के पक्ष में और मालिक-पुलिस के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाई। इस हमाम में सब नंगे हैं।

मज़दूरों की दर्दनाक मौत का कसूरवार स्पष्ट तौर पर मालिक ही है। कारखाने में आग लगने से बचाव के कोई साधन नहीं हैं। आग लगने पर बुझाने के कोई साधन नहीं हैं। रात के समय जब मज़दूर काम पर कारखाने के अन्दर होते हैं तो बाहर से ताला लगा दिया जाता है। उस रात भी ताला लगा था। जिस हॉल में आग लगी उससे बाहर निकलने का एक ही रास्ता था जहाँ भयानक लपटें उठ रही थीं। करोड़ों-अरबों का कारोबार करने वाले मालिक के पास क्या मज़दूरों की जिन्दगियाँ बचाने के लिए हादसों से सुरक्षा के इंतज़ाम का पैसा भी नहीं है? मालिक के पास दौलत बेहिसाब है। लेकिन पूँजीपति मज़दूरों को इंसान नहीं समझते। इनके लिए मज़दूर कीड़े-मकोड़े हैं, मशीनों के पुर्जे हैं। यह कहना जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि ये महज हादसे में हुई मौतें नहीं है बल्कि मुनाफे की खातिर की गयी हत्याएँ हैं।

प्रश्न यह भी उठता है कि श्रम विभाग के अधिकारियों पर कार्रवाई क्यों नहीं की गयी है जिनकी कारखानों में सुरक्षा के इंतज़ाम कराने की जिम्मेदारी बनती है। कारखाने के गेट पर कोई बोर्ड तक नहीं लगा है। मज़दूरों को ई.एस.आई., पी.एफ., पहचानपत्र, बोनस, न्यूनतम वेतन जैसे कानूनी हक़ नहीं मिलते। हादसों व बीमारियों से सुरक्षा के कोई इंतज़ाम नहीं हैं। सरकारी श्रम अधिकारी इस बात का जवाब दें कि आखिर ये कारखाना चल कैसे रहा है? आखिर कितनी घूस लेकर मज़दूरों की ज़िन्दगियों के साथ खिलवाड़ किया गया है? इन्हें तो जेल में होना चाहिए लेकिन ये आरामदायक कुर्सियों पर बैठकर मज़दूरों का ख़ून चूस रहे हैं।

मज़दूरों को फैसला करना होगा कि उन्हें आदमखोर कारखानों में कब तक मालिकों की मुनाफे की हवस की बलि चढ़ते रहना है? हम सभी जानते हैं कि जिन कारणों से 6 मई को हमारे तीन मज़दूर साथी जिन्दा झुलस कर मरे हैं वे कारण सिर्फ ज्ञानचन्द डाईंग/गुलशन

(पेज 4 पर जारी)

राहुल सांकृत्यायन के जन्म दिवस (9 अप्रैल) से स्मृति दिवस (14 अप्रैल) तक

'भागो नहीं दुनिया को बदलो' जन अभियान

राहुल सांकृत्यायन के जन्म दिवस 9 अप्रैल से स्मृति दिवस 14 अप्रैल तक उत्तर-पश्चिमी दिल्ली की जागरूक नागरिक मंच और नौजवान भारत सभा द्वारा 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' जन अभियान की शुरुआत की गयी। पांच दिवसीय इस जन अभियान में जगह-जगह पोस्टर प्रदर्शनी लगायी गयी और पर्चा वितरण किया गया।

राहुल सांकृत्यायन ने पूरे समाज में धार्मिक रूढ़ियों और पाखण्डों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी और आम मेहनतकश जनता को जागरूक किया। आज भी समाज को धर्म और सम्प्रदाय के आधार पर बाँटने वाली शक्तियाँ राहुल सांकृत्यायन के विचारों से डरती हैं। पहले ही दिन सुबह पार्क में पोस्टर प्रदर्शनी लगाते समय संघियों ने इसका विरोध करना शुरू किया लेकिन आम जनता के समर्थन की वजह से वे कुछ करने की हिम्मत नहीं कर सके।

धार्मिक पाखण्डों और साम्प्रदायिक फासिस्टों की कलई खोलने वाले पोस्टर देखकर संघी पहले दिन की तरह दूसरे दिन भी पोस्टर देखकर भड़क गये और पोस्टर फाड़ने और प्रदर्शनी हटाने की कोशिश करने लगे। उन्होंने 'देश भक्ति और देशद्रोह' का राग अलापना शुरू किया, लेकिन जनता के समर्थन में खड़े होने की वजह से वे कुछ कर नहीं सके।

प्रदर्शनी अभियान के दौरान आर।एस।एस। के ''देशप्रेमी'' राहुल सांकृत्यायन और राधामोहन गोकुल जी, प्रेमचन्द और भगतसिंह को विदेशी बताने लगे। इस पर लोगों ने ही सवाल कर दिया कि ये लेखक विदेशी कैसे हैं। तो उन्होंने माओवादी, नक्सली होने का आरोप लगाते हुए हंगामा शुरू किया और कहा कि इनको विदेशों से पैसा आता है। लेकिन इस पर भी जब इनकी दाल नहीं गली और लोगों को अपने विरोध में देखा तो वे वहाँ से निकल लिये।

धार्मिक कट्टरता, जातिभेद की संस्कृति और हर तरह की दिमाग़ी ग़ुलामी के ख़िलाफ़ राहुल के आह्वान पर अमल हमारे समाज की आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। पूँजी की जो चौतरफ़ा जकड़बन्दी आज हमारा दम घोंट रही है, उसे तोड़ने के लिए ज़रूरी है कि तमाम परेशान-बदहाल मेहनतकश आम लोग एकजुट हों और यह तभी हो सकता है जब वे धार्मिक रूढ़ियों और जात-पाँत के भेदभाव से अपने को मुक्त कर लें।

राहुल सांकृत्यायन की परम्परा प्रगति और सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति के अविरल प्रवाह की परम्परा है। राहुल उन कुरसीतोड़ समाज चिन्तकों में से नहीं थे जो केवल किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर समाज परिवर्तन के ख़याली सिद्धान्त प्रस्तुत कर देते हैं बल्कि वे एक दार्शनिक, विचारक, इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता, साहित्यकार, भाषाशास्त्री और वैज्ञानिक भौतिकवाद के प्रचारक होने के साथ ही लोकप्रिय जन-नेता भी थे जो जनता के संघर्षों से लगातार जुड़े रहे।

'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' राहुल के जीवन का सूत्रवाक्य था। वे हर तरह की शिथिलता, गतिरोध, कूपमण्डूकता, अन्धविश्वास, तर्कहीनता, यथास्थितिवाद, पुनरुत्थानवाद और अतीतोन्मुखता के ख़िलाफ़ निरन्तर संघर्ष करते रहे।

राहुल सांकृत्यायन ने कहा था - **''जगत की गति के साथ हमें भी सरपट दौड़ना चाहिए, किन्तु धर्म हमें खींचकर पीछे रखना चाहते हैं। क्या हमारे पिछड़ेपन से संसार चक्र हमारी प्रतीक्षा के लिए खड़ा हो जायेगा? सामाजिक विषमता के नाश, निकम्मी और अनपेक्षित सन्तान के निरोध, आर्थिक समस्याओं के नये हल।।। सभी बातों में तो यह मजहब प्राणप्रण से हमारा विरोध करते हैं, हमारी समस्याओं को और अधिक उलझाना और प्रगति-विरोधियों का साथ देना ही एकमात्र इनका कर्तव्य रह गया है।''**

पावर प्रेस मज़दूर की उँगली कटी, मालिक बोला मज़दूर ने जानबूझ कर कटवाई है!

लुधियाना के एक कारखाने में 13 अप्रैल 2016 को गजेंदर महतो (उम्र 32 साल) एक पावर प्रेस मशीन चला रहा था। कारखाना मालिक ने उसी दूसरी पावर प्रेस मशीन पर काम करने को कहा। गजेंद्र ने देखा कि उस मशीन के सेंसर खराब हैं। क्लच भी ढीला है। हादसा होने के डर से उसने दूसरी मशीन चलाने से इनकार कर दिया। मालिक ने उसे काम से निकाल देने की धमकी दी। उसकी आर्थिक हालत कुछ ज़्यादा ही खराब चल रही थी। अभी कुछ दिन पहले ही उसकी पतनी के कान का आपरेशन हुआ है। तीन बच्चे भी हैं। इस हालत में वह काम छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा सका और दूसरी मशीन चलाने लगा। कुछ ही समय बीता था कि एक भयानक हादसा हो गया। उसका दायाँ हाथ अभी प्रेस के बीच में ही था कि ढीला क्लच दब गया। अँगूठे के साथ वाली एक उँगली कट गयी। मालिक उसे उठाकर एक निजी अस्पताल ले गया। मालिक ने कहा कि वह पुलिस के पास न जाए। पूरा इलाज करवाने, हमेशां के लिए काम पर रखने, मुआवजा देने आदि का भरोसा दिया। गजेंदर मालिक की बातों में आ गया। पन्द्रह दिन भी नहीं बीते थे कि उसे काम से निकाल दिया गया। मालिक ने इलाज करवाना बन्द कर दिया और अन्य किसी भी प्रकार की आर्थिक मदद करने करने से भी साफ मुकर गया।

यह हादसा स्पष्ट तौर पर कारखाना मालिक की मुनाफे की हवस और आपराधिक लापरवाही का नतीजा है। लेकिन बेशर्मी की हद देखो। मालिक कह रहा है कि गजेंदर ने जानबूझ कर अपनी हाथ मशीन में दिया है।

कारखाने में लगभग 15 मज़दूर काम करते हैं। लेकिन किसी भी मज़दूर को ना तो पहचान पत्र मिला है, न ई.एस.आई. और न ही पी.एफ. की सुविधा मिली है। कारखाने का नाम किसी भी मज़दूर को नहीं पता है। बस मालिक का नाम पता है – बी.डब्ल्यू. शर्मा। लुधियाना के शेरपुर इलाके में शहीद भगतसिंह नगर की तीन नम्बर गली में स्थित इस कारखाने के गेट पर कोई बोर्ड नहीं लगाया गया। (लुधियाना में बड़ी गिनती कारखानों की यही हालत है) न ही कारखाने के मज़दूर एकजुट हैं और न ही इलाके में मज़दूरों की यूनियन बनी है। नतीजा यह है कि अन्य कारखाना मालिकों की तरह यह मालिक भी मज़दूरों को जमकर लूटने के लिए पूरी तरह आज़ाद है। ऐसे ही हालात ज़्यादातर फैक्टरियों में हैं क्योंकि मालिक को मज़दूर की सुरक्षा पर एक रुपया भी खर्च करना फालतू खर्च लगता है। दूसरे, एक मज़दूर को निकालो तो पाँच काम करने को तैयार मिल जाते हैं।

गजेंदर ने 30 अप्रैल को कारखाना मज़दूर यूनियन के साथ सम्पर्क किया। पुलिस के पास शिकायत दर्ज करवायी गयी है। श्रम विभाग में भी शिकायत की जाएगी। उस इलाके में मज़दूरों की एकजुटता ना होने के चलते सिर्फ कानूनी मदद ही की जा सकती है। वास्तविक हल तो मज़दूरों की एकता से ही हो सकता है। अगर इलाके के मज़दूरों की एकजुटता होती तो मालिक इस ढंग से अपनी मनमर्जी नहीं सक सकता था।

— बिगुल संवाददाता

मुनाफे की खातिर मज़दूरों की हत्याएँ आखिर कब रुकेंगी ?

तीन मज़दूरों की भयानक मौत को पुलिस ने अपनी जेबें भरने के लिए इस्तेमाल किया। मामला रफा-दफा करने की कोशिश हुई। जब यूनियन के नेतृत्व में मज़दूर इक्कठा होने शुरू हुए तो मज़दूरों पर लाठीचार्ज किया गया। लेकिन मज़दूरों ने अपना प्रदर्शन जारी रखा। बाद में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन, बिगुल मज़दूर दस्ता व नौजवान भारत सभा द्वारा कारखानों में सुरक्षा के सवाल पर जारी एक पर्चा मेहरबान व अन्य इलाकों में बाँटा गया और मज़दूरों की नुक्कड़ सभाएँ व मीटिंगें की गयीं।

(पेज 3 से आगे)

हौज़री तक सीमित नहीं हैं। लुधियाना ही नहीं बल्कि देश के तमाम कारखानों में ये हालात बन चुके हैं। कहीं कारखानों की इमारतें गिर रही हैं, कहीं खस्ताहाल ब्वायलर व डाईंग मशीनें फट रही हैं और कहीं कारखानों में आग लगने से मज़दूर जिन्दा झुलस रहे हैं। और सोचने वाली बात है कि कहीं भी मालिक नहीं मरता, हमेशा गरीब मज़दूर मरते हैं। चलते कारखानों को बाहर से ताले लगा दिये जाते हैं (खासकर रात में)। अन्दर मज़दूर मरने-कटने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। हादसे होने पर सरकार, पुलिस, प्रशासन, श्रम अधिकारियों की मदद से मामले रफा-दफा कर दिए जाते हैं। बहुत सारे मामलों में तो मालिक हादसे का शिकार मज़दूरों को पहचानने से ही इनकार कर देते हैं। मज़दूरों को न तो कोई पहचान पत्र दिया जाता है और न ही पक्का हाजिरी कार्ड दिया जाता है। इन हालात में मालिकों के लिए मामला रफा-दफा करना आसान हो जाता है।

— बिगुल संवाददाता

आर.एस.एस. और बी.एम.एस. के मई दिवस विरोध के असली कारण

पहली मई 1886 के ऐतिहासिक दिन हे मार्केट, शिकागो, अमेरिका में मज़दूर बडे पैमाने पर उठ खडे हुए थे पूँजीपति मालिकों से अपने हक की लडाई लडने के लिए। हक और इंसाफ की माँग करते इन मज़दूरों पर मालिकों की पिठ्ठू पुलिस ने निर्दयतापूर्ण हमला कर बहुत सारे मज़दूरों की हत्या कर दी थी। उस दिन बहे मज़दूरों के इस खून से ही रंगकर दुनिया के मज़दूरों के झंडे का रंग लाल हुआ। इसने मज़दूर वर्ग को सिखाया कि पूँजीवादी व्यवस्था का जनतंत्र मालिक बुर्जुआ वर्ग का जनतंत्र है, मेहनतकशों का नहीं – उनके लिये तो वह अधिनायकवाद है जो मालिकों द्वारा मज़दूर वर्ग की लूट के तंत्र की हिफाजत करता है।

दुनिया भर के मज़दूरों ने लाल झंडे के साथ मई दिवस को मनाना शुरू किया शिकागों के उन्हीं बलिदानी मज़दूरों को श्रद्धांजलि देने और यह शपथ लेने के लिये कि यह लडाई पूँजीवाद को उखाड फेंकने व शोषण मुक्त समाज कायम करने की जिम्मेदारी पूरे होने तक जारी रखी जायेगी। इसे 'अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस' नाम दिया गया यह बताने के लिये कि दुनिया भर के मज़दूर एक दूसरे के बँधु-बाँधव हैं और उनका साझा दुश्मन है दुनिया का पूँजीपति वर्ग जो उनकी लडाई को कमजोर करने के लिये उन्हें राष्ट्र, क्षेत्र, भाषा, मजहब, आदि के नाम पर बाँट कर आपस में भिडाये रखना चाहता है।

दुनिया के मज़दूरों को सरमायेदारों की सत्ता व शोषण को खत्म करने के संघर्ष की प्रेरणा देने वाला यह मई दिवस पूँजीपति वर्ग व उसके पैरोकारों को कैसे पसंद आ सकता है? यह तो उनके दिलों में भय और कंपकपी पैदा करने का संदेश देने वाला दिन है। इसलिये स्वाभाविक ही है कि वे मई दिवस को बदनाम करें, इसके संदेश को भुलाने-भरमाने की कोशिश करें और मजदुर वर्ग को इसके बारे में बरगलायें।

यही काम आज भारत के पूँजीपति वर्ग की सबसे विश्वस्त पार्टी और उसकी चाबी अपने हाथ में रखने वाला राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) करना चाहता है। इनको अच्छी तरह मालूम है कि सिर्फ दमन के बल पर मज़दूर वर्ग के संघर्ष को रोका/दबाया नहीं जा सकता। जिस दिन मज़दूर वर्ग अपनी क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में सचेत और संगठित हो जायेगा वह सारे दमन-उत्पीडन के बावजूद इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड फेंकेगा। उसको रोकने का एक ही तरीका है उसकी वर्गीय चेतना-समझ को भोथरा और कुन्द करना। इसके लिये ही पूँजीपति वर्ग के भाडे के टट्टू ये भेड की खाल पहने भेडिये की तरह मज़दूरों की ट्रेड यूनियन बनाते हैं, उन्हें सिर्फ कुछ आर्थिक व अन्य छोटी-मोटी सुविधाओं की लडाई तक सीमित करते हैं और मज़दूरों को मालिकों का अहसानमंद भक्त बनने की शिक्षा देते हैं।

आरएसएस का ट्रेड यूनियन संगठन भारतीय मज़दूर संघ (बीएमएस) इसीलिए मज़दूरों के मई दिवस मनाने के विरोध में है। इसके सचिव के अखबारों में प्रकाशित वक्तव्य के अनुसार 1 मई 1886 को शिकागो के हे मार्केट में हुए 'रक्तपात व हिंसा' की वजह से वे मई दिवस को नहीं मानते। 'हम ऐसी दर्दनाक घटनाओं का स्मरण नहीं करते। यह सृजनात्मक विचार नहीं है; यह मज़दूरों में नफरत भडकाता है।' मतलब साफ है कि ये छद्म मज़दूर हितैषी इस बात को मज़दूरों की याददाश्त से ही मिटा देना चाहते हैं कि किस प्रकार अपने वाजिब हक की आवाज उठाते मज़दूरों की हत्यायें की गयी थीं, कैसे उनके नेताओं को झूठे-फर्जी मुकदमों में फंसाकर फांसी-उम्रकैद की सजा दी गयी थी। उनकी बात बिल्कुल सही भी है – पूँजीपति वर्ग का चरित्र उस जोंक का है जो मज़दूर वर्ग का खून चूसकर मोटी होती जा रही है। उस जोंक को अगर खून चूसने से रोक दिया जाये तो निश्चित ही उसके लिये वह बहुत दर्दनाक होगा। इसी तरह मज़दूर वर्ग का अपने हक के लिये उठ खडे होने की घटना भी पूँजीपति वर्ग के लिये एक 'दर्दनाक घटना' थी; उसको याद करने से उनको अपने लूटतंत्र के खत्म होने का दु:स्वप्न दिखाई देता है और इस डर वे से थरथराने लगते हैं – निश्चित ही ऐसी किसी दर्दनाक घटना को वे याद नहीं करना चाहते! लेकिन क्या मज़दूर वर्ग की चाहत भी वही है जो मालिकों की? निश्चित ही नहीं – मज़दूर वर्ग की चाहत है शोषण की व्यवस्था की समाप्ति। इसलिये कोई भी संगठन, जो मज़दूर वर्ग का हितैषी है, वह कैसे मई दिवस के खिलाफ हो सकता है? स्वभाविक ही है कि इस अत्याचार का प्रतिकार करने की चेतना अगर मज़दूर वर्ग में पैदा होगी तो वह मालिकों को नफरत ही दिखाई देगी, लेकिन मज़दूर वर्ग का असली संगठन कभी भी इस चेतना को दबाने के बजाये इसे और तीव्र ही करना चाहेगा।

बीएमएस के सचिव का आगे कहना है – 'मई दिवस भारतीय मानस का अंग नहीं है इसलिये बीएमएस इसे नहीं मानता। यह मज़दूरों को अच्छा संदेश नहीं देता। इसलिये हम इसके बजाय विश्वकर्मा जयंती के दिन भारतीय श्रमिक दिवस मनाते हैं।' मई दिवस द्वारा अपने वाजिब हक के लिये लडने के संदेश को 'अच्छा नहीं' कहने वाला संगठन आखिर विश्वकर्मा जयंती से मज़दूरों को क्या संदेश देना चाह्ता है? ये मज़दूरों को बताते हैं कि मालिक लोग अपनी मेहनत व प्रतिभा से उद्योग लगाते हैं, उससे मज़दूरों को रोजगार मिलता है, उनके परिवारों की रोजी-रोटी चलती है; इसलिये मज़दूरों को उनका अहसानमंद होना चाहिये। जिन मशीनों-औजारों पर काम करके उनकी रोजी-रोटी चलती है उनकी पूजा करनी चाहिये, उनकी सफाई-देखभाल करनी चाहिये और ज़्यादा से ज़्यादा काम करने की शपथ लेनी चाहिये, जिससे उत्पादकता बढे। लेकिन वह मज़दूरों को यह नहीं बताते कि मालिक का मुनाफा मजदुर के श्रम से उत्पाद की वस्तु के मूल्य में होने वाले इजाफे से ही आता है – तो मज़दूर जितना ज़्यादा श्रम करेंगे मालिकों उनकी मेहनत के मूल्य को उतना ही ज़्यादा अपनी जेब में डालकर और भी सम्पत्तिशाली होते जायेंगे और इससे मज़दूरों को कुछ हासिल नहीं होगा। मज़दूरों का नाम लेने वाला लेकिन अन्दर से मालिकों के हितों का पोषण करने वाला कोई संगठन ही मज़दूरों को ऐसा संदेश देने को अच्छा बता सकता है।

इनका और भी कहना है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस' 'भारतीय संस्कृति' से विलग है और 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के विपरीत है। इनके अनुसार मज़दूर दिवस वामपंथियों की 'सामाजिक विद्वेष' फैलाने की प्रवृत्ति का अंग है। इनको अच्छी तरह मालूम है कि मज़दूर वर्ग की देश और दुनिया के पैमाने पर एकता उसके संघर्ष का बडा हथियार है। इसलिये ये हमेशा मज़दूरों को धर्म, मजहब, भाषा, इलाका, जाति, आदि के नाम पर बाँट कर आपस मे लडाना चाहते हैं ताकि एक क्षेत्र या देश के मज़दूरों के संघर्ष में बाकी मज़दूर उनकी मदद करना तो दूर बल्कि इनके इशारे पर उनको अपना दुश्मन मानकर उनपर दमन करने में मालिकों की हिमायत और मदद करें। इसीलिये ये मज़दूर वर्ग के संगठन में राष्ट्र और संस्कृति को सवाल खडा करते हैं लेकिन मज़दूरों को पूछना होगा कि कौन सी संस्कृति? जो मालिकों के शोषण को जायाज ठहराती है या मजदुर वर्ग को अपने शोषण के खिलाफ उठ खडे होने की प्रेरणा देती है?

मेहनतकश तबके को आज यह पक्का समझ लेना चाहिये कि इस प्रकार के मजदूर वर्ग हित विरोधी विचार फैलाने वाले संगठन असल में मज़दूर वर्ग को धोखा देकर मालिकों के हित साधने वाले संगठन हैं। मज़दूरों को भ्रमित व बरगलाने वाले इन ट्रेड युनियनों को पहचानकर उनका भंडाफोड करने और उन्हें मज़दूरों के बीच से भगा देने की सख्त जरूरत है।

— मुकेश त्यागी

'आधार' – जनता के दमन का औज़ार

बीती 11 मार्च को लोकसभा में आधार कानून–2006 पारित कर दिया गया है। इससे सम्बन्धित बिल मोदी सरकार द्वारा धन सम्बन्धी बिल के रूप में पेश किया गया था। इसलिए इसे राज्यसभा में पारित करवाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। लोकसभा में मोदी सरकार के पास बहुतमत है लेकिन राज्यसभा में नहीं है। राज्यसभा में इस कानून को पारित करवा पाना मोदी सरकार के लिए बहुत मुश्किल था इस लिए इसे धन सम्बन्धी कानून के रूप में पेश करना बेहतर समझा। आधार कानून के तहत वेतन भुगतान, बुढापा पेंशन, स्कूल दाखिला, ट्रेन बुकिंग, विवाह पंजीकरण, ड्राईविंग लाईसेंस, सिम कार्ड खरीदने, साईबर कैफे इस्तेमाल करने आदि के लिए आधार कार्ड लाजिमी कर दिया गया है। आधार कार्ड इस्तेमाल करने की इतनी सारी मज़बूरियों के बाद आधार कार्ड बनवाना मज़बूरी बन जाता है।

1 अक्टूबर 2013 को आधार कार्ड सम्बन्धी परियोजना शुरू की गयी थी। उस समय कहा गया था कि आधार कार्ड बनवाना किसी के लिए आवश्यक नहीं है। कोई बनवाये चाहे न बनवाये। सरकार की शुरू से ही यह कोशिश रही है कि भारत वासियों के लिए यह कार्ड बनवाना मजबूरी बन जाए। इसलिए रसोई गैस, बैंक खाता आदि विभिन्न सेवाओं के लिए इसे आवश्यक बनाने की कोशिश की गयी। सुप्रीम कोर्ट ने इस सम्बन्ध में एक फैसला किया था कि किसी भी सेवा के लिए आधार कार्ड आवश्यक तौर पर नहीं माँगा जाना चाहिए। इसके बाद अब सरकार यह आधार कानून ले आयी है। हालाँकि सरकार आधार को एक जनपक्षधर परियोजना के रूप में प्रचारित कर रही है लेकिन वास्तव में आधार राज्यसत्ता के हाथ में दमन के एक बेहद खतरनाक औज़ार के सिवा और कुछ नहीं है। आधार कार्ड के जरिए विभिन्न सुविधाएँ -आर्थिक लाभ-सब्सिडियाँ जनता तक पहुँचाने की बातें तो सिर्फ एक बहाना हैं। जनता के निजी गुप्तता के अधिकार का हनन, इस तरह जनता के अन्य जनवादी अधिकारों को कुचलना ही वास्तविक निशाना है।

बहुत सारे लोगों को हमारी उपरोक्त बात बहुत हैरानी वाली लगेगी। लेकिन हमारे द्वारा यह बात कहे जाने के पुख्ता कारण हैं। जब से देश में आधार कार्ड लागू किया गया है तब से ही अनेकों लोग आधार कार्ड पर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं। कांग्रेस के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार द्वारा इसे लागू किया गया और इसने भी इसे लोगों पर जबरदस्ती थोपने की कोशिश की थी। लेकिन अब जब भाजपा के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार ने इस बारे में कानून बनाया है तो कांग्रेस, इसकी सहयोगी व अन्य पार्टियाँ आधार कानून के कुछ पक्षों की आलोजना कर रही हैं और जरूरी संशोधनों की जरूरत पर ज़ोर दे रही हैं। वोट सियासत में चुनावी पार्टियों को सहमती होते हुए भी असहमती के डरामे करने पड़ते हैं। बहुत सारे लोग आधार कार्ड सम्बन्धी लोगों की निजी गुप्तता की सुरक्षा की गारण्टी करने के लिए जरूरी कानूनी प्रावधानों की बात कह रहे हैं। लेकिन हमारा मानना है कि समूची आधार परियोजना को ही खत्म किया जाना चाहिए।

आधार कार्ड के लिए भारत वासियों के नाम, पते, तस्वीर सहित हाथों की उँगलियों की निशान और आँखों की पुतलियों के स्कैन आदि निजी जानकारी जुटाई जाती है। इस जानकारी को भारत की आधार अथारिटी के केन्द्रीय डाटाबेस में इकट्ठा किया जा रहा है। जनगणना के तहत जुटाई कई व्यक्तिगत जानकारी भी इस आधार खाते के साथ जोड़ी जा रही है। पूरे देश में विभिन्न सेवाओं को इस केन्द्रीय डाटाबेस के साथ इण्टरनेट के ज़रिए जोड़ा जा रहा है। कानूनन इस जानकारी को कोई भी अफसर या अन्य कोई व्यक्ति सार्वजनिक नहीं कर सकता। लेकिन अदालतें ज़रूरत पड़ने के आधार पर उपलब्ध जानकारी मँगवा सकते हैं। ज्वाइण्ट सेक्रेटी स्तर का अधिकारी राष्ट्रीय सुरक्षा का कारण बताते हुए किसी व्यक्ति की जानकारी सार्वजनिक करने की आज्ञा दे सकता है।

इस तरह आधार के ज़रिए कम से कम इतना तो पक्का कर दिया गया है कि सरकारी तंत्र के पास आधार कार्डधारक सम्बन्धी पूरी जानकारी उपलब्ध होगी। विभिन्न सेवाएँ हासिल के लिए लिए लोगों को आधार कार्ड इस्तेमाल करना पड़ेगा। कौन कहाँ आ-जा रहा है, बैंक खाते के जरिए क्या लेन-देन कर रहा है, किस से फोन पर बात कर रहा है आदि अनेकों निजी गुप्तता वाली जानकारियाँ अब सरकारी तंत्र के पास हर वक्त उपलब्ध रहेंगी। मसला सिर्फ आधार से जुड़ी व्यक्तिगत जानकारी सार्वजनिक किये जाने का नहीं है। बल्कि सबसे बड़ी बात है कि जनविरोधी सरकारी तंत्र आपकी जिन्दगी के बड़े दायरे में ताक-झाँक कर सकता है, दखल दे सकता है, आपकी जिन्दगी को बुरी तरह प्रभावित कर सकता है। कर सकता है नहीं बल्कि यह कहना ज़्यादा ठीक रहेगा कि करेगा ही करेगा। मंत्री, सांसद, विधायक, व राजनीतिक पहुँच वाले तमाम व्यक्ति, पुलिस-फौज, अदालत, समाज का राजनीतिक-आर्धिक असर-रसूख वाला सारा तबका, आधार के जरिए कानूनी-गैरकानूनी ढंग से हासिल जानकारी के जरिए साधारण जनता को बड़े स्तर पर तंग-परेशान करेगा, जुल्म-दमन का शिकार बनायेगा। विभिन्न जगह पर बिखरी जानकारी को इस मकसद के लिए जुटाना अपेक्षाकृत मुश्किल है। लेकिन अब सारी जानकारी एक जगह मिल जायेगी। राजनीतिक विरोधियों को दबाने के लिए, खासकर क्रान्तिकारी-जनवादी आन्दोलन के साथ जुड़े नेताओं, कार्यकर्ताओं,

(पेज 7 पर जारी)

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर विश्वभर में गूँजी मज़दूर मुक्ति की आवाज़

मई दिवस के शहीद अल्बर्ट पार्सन्स ने फाँसी के तख्ते से चीखकर पूँजीपति वर्ग के चेतावनी दी थी - ''अगर तुम सोचते हो कि हमें फाँसी पर लटकाकर तुम मज़दूर आन्दोलन को...ग़रीबी और बदहाली में कमरतोड़ मेहनत करनेवाले लाखों लोगों के आन्दोलन को कुचल डालोगे, अगर तुम्हारी यही राय है – तो ख़ुशी से हमें फाँसी दे दो। लेकिन याद रखो...आज तुम एक चिंगारी को कुचल रहे हो लेकिन यहाँ-वहाँ, तुम्हारे पीछे, तुम्हारे सामने, हर ओर लपटें भड़क उठेंगी। यह जंगल की आग है। तुम इसे कभी भी बुझा नहीं पाओगे।...'' मज़दूरों के उस महान नेता ने बिल्कुल सच कहा था। मज़दूर शहीदों की कुर्बानियाँ विश्व मज़दूर वर्ग को अथाह प्रेरणा व ऊर्जा देती आयी हैं।

भले ही हर वर्ष पहली मई को मनाए जाने वाले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस की महान विरासत पर धूल-राख की मोटी चादर डालने की रंग-बिरंगी पूँजीवादी ताकतों ने हर सम्भव कोशिश की है लेकिन मई दिवस आज भी मज़दूर वर्ग के लिए अथाह प्रेरणा का स्रोत है। इस दिन को महज एक अनुष्ठान में बदल देने की कोशिशें होती रही हैं। इसे चुनावी वोट मदारियों ने मज़दूरों की वोटे हासिल करने के लिए इस्तेमाल किया है। इस दिन पर कुछ पूँजीवादी नेताओं को मज़दूरों के मसीहे बनाकर पेश करने की कोशिश की जाती है। मई दिवस के महत्तव को घटाने के लिए इस दिन मंचों पर घटिया स्तर के गीत-नाच पेश किए जाते हैं। पूँजीपतियों की दलाल ट्रेड यूनियनों ने इस दिन को अपने नीच उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया है। पूँजीपति इस पर मज़दूरों को यह बताने की कोशिश करते हैं कि यह दिन तो और मेहनत करके कारोबार बढ़ाने की कसमें खाने का दिन है। बहुत सारे ऐसे हैं जो मज़दूरों की सोच को पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ़ जाने से रोकने के लिए इस दिन पर कार्यस्थल (कारखाना, खेत, भट्ठा आदि) स्तर की आर्थिक माँगों से ऊपर की कोई बात नहीं करते। अगर वे सरकार के खिलाफ़ भी बोलते हैं तो उनका मकसद मज़दूरों के दिमाग में अर्थवादी माँगे बिठाना ही होता है। इन ताकतों में खुद को वामपंथी ऐलान करने वाले नकली लाल झण्डों की भूमिका काफी अहम है। मज़दूर वर्ग के पूँजीवाद के खिलाफ़ संघर्ष की धार को कुन्द करने के लिए इनसे बढ़िया भूमिका और कौन निभा सकता है? लेकिन इस सब के बावजूद भी कुल मिलाकर मज़दूरों का पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ़ गुस्सा बढ़ता जा रहा है जो हर साल मई दिवस के विभिन्न आयोजनों में देखने को मिलता है।

इस वर्ष भी विश्वभर में करोड़ों मज़दूरों न पूँजीवादी लूट के खिलाफ़ जोरदार आवाज़ बुलन्द की है। आयोजन चाहे क्रान्तिकारी ताकतों की पहलीकदमी पर हुए हों या चाहे पूँजीपरस्त नेताओं/संगठनों की पहलकदमी पर हुए हों, अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर मज़दूरों द्वारा दिखाया जोश यह दिखाता है कि वे मौजूदा लुटेरी व्यवस्था से किस कदर दुखी हैं, कि वे पूँजीपक्षधर नेताओं के लक्ष्यों से अगली कार्रवाई चाहते हैं, कि वे गुलामी वाली परिस्थितियों से छुटकारा चाहते हैं। अनेक स्थानों पर क्रान्तिकारी व मज़दूर पक्षधर ताकतों के नेतृत्व में आयोजन हुए जिनके दौरान मज़दूर वर्ग की मुक्ति की लड़ाई जारी रखने, पूँजीवादी व्यवस्था को जड़ से मिटाने, पूँजीपति वर्ग के मज़दूर वर्ग और अन्य मेहनतकश लोगों के खिलाफ़ तीखे हो रहे हमलों के खिलाफ़ संघर्ष तेज़ करने के संकल्प लिए गये।

इस वर्ष पहली मई के दिन विश्वभर में मज़दूर कहीं सैकड़ों, कहीं हजारों तो कहीं लाखों की संख्या में इकट्ठे होकर मई दिवस के प्यारे मज़दूर शहीदों को लाल सलाम कह रहे थे, मज़दूर वर्ग के रोशन भविष्य के लिए दी गईं उनकी कुर्बानियों को याद कर रहे थे। कई जगह मज़दूरों ने सरकार की पूँजीपति वर्ग के हित्त में और मज़दूर वर्ग के खिलाफ़ नीतियों का तीखा विरोध दर्ज कराया। इस दौरान पुलीस के साथ तीखी झड़पें हुईं। बड़ी संख्या में मज़दूरों की गिरफ़्तारियाँ हुईं, मज़दूर और पुलिस वाले जख्मी हुए। अपने जोशीले प्रदर्शनों और समागमों के ज़रिए इस बार फिर मई दिन पर मज़दूर वर्ग ने शासक पूँजीपति वर्ग के सामने यह ऐलान किया है कि वे गुलामी की ज़ंजीरें हर हाल में तोड़ कर रहेंगे।

यहाँ हम विश्व में मई दिवस पर हुई कुछ गतिविधियों की जानकारी साझा करेंगे।

मज़दूर वर्ग ने फ्रांस की राजधानी पेरिस में अपनी पहली राज्यसत्ता कायम की थी जो विश्व मज़दूर वर्ग के लिए प्रेरणा व शिक्षा का स्रोत रही है। फ्रांस के मज़दूर आज भी अपनी पूँजीवादी लूट-अन्याय के खिलाफ़ सख्त लड़ाई लड़ रहे हैं और विश्व के मज़दूरों का सिर गर्व के साथ ऊँचा कर रहे हैं। मार्च-अप्रैल महीनों के दौरान फ्रांस के मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों ने सरकार की मज़दूर व जनविरोधी नीतियों खासकर श्रम कानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधनों के प्रस्तावों के खिलाभ ज़बरदस्त आन्दोलन लड़ा है। लाखों की संख्या में मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों ने सड़कों पर उतरकर हुक़्मरानों को टक्कर दी है। 28 अप्रैल को भी लाखों मज़दूरों ने सरकार के खिलाफ़ प्रदर्शन किये थे। पहली मई के लिए भी बड़े प्रदर्शनों का ऐलान किया गया था। पहली मई को फ्रांस की सड़कों पर तथाकथित वामपंथी सरकार की कट्टर पूँजीवादी नीतियों के खिलाफ़ मज़दूरों-नौजवानों की बाढ़ सी आ गयी। पाँच लाख से अधिक लोगों ने मई दिवस के प्रदर्शनों में हिस्सा लिया। हुक़्मरानों ने ताकत के जरिए मज़दूरों की आवाज़ दबानी चाही। लाठियाँ बरसाई गयीं, आँसू गैस के गोले फेंके गये, बड़ी संख्या लोगों की गिरफ़्तारियाँ हुईं। लेकिन मज़दूरों-नौजवानों का जोश ठण्डा नहीं पड़ा बल्कि उनका लड़ाई लड़ने का अहसास और भी गहरा हो गया।

दक्षिण कोरिया में दसियों हजार मज़दूरों ने मई दिवस पर हुक़्मरानों की मज़दूर अधिकारों को कुचलने की नीतियों के खिलाफ़ जोरदार प्रदर्शन किये। यहाँ भी सरकार पूँजीपतियों को मज़दूरों की छँटनी करने की बड़ी छूटें देने के लिए और अन्य श्रम अधिकार छीनने के लिए कानून ला रही है। यहाँ भी मज़दूरों की पुलीस के साथ सख्य टक्कर हुई। मज़दूर जख्मी हुए, गिरफ़्तार किए गये लेकिन उनका लाल झण्डा झुका नहीं।

रूस में तेज़ी से बढ़ती आर्थिक बदहाली का शिकार मज़दूर लाखों की संख्या में मई दिवस पर सड़कों पर उतर आये। मास्को के लाल चौक में दसियों हज़ार मज़दूरों ने मई दिवस परेड में भागीदारी की और पूँजीवादी हुक़्मरानों को चुनौती दी। उनके हाथों में मज़दूर वर्ग के महान शिक्षकों व नेताओं मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्टालिन की तस्वीरें थीं। वे समाजवाद की पुनःस्थापना के लिए आवाज़ उठा रहे थे और पूँजीवादी हुक़्मरानों के दिलों में कँपकँपी पैदा कर रहे थे।

तुर्की में मई दिवस के प्रदर्शनों को रोकने के लिए सरकार ने अनेक सख्त पाबन्दियों का ऐलान किया था। इंस्ताबुल शहर के तकसीम चौक पर लोगों के इकट्ठे होने पर भी रोक लगाई गयी थी। तकसीम चौक राजनीतिक रोष प्रदर्शनों-रैलियों के लिए अहम स्थान है। मई दिवस के साथ इसका खास सम्बन्ध है। पहली मई 1977 के प्रदर्शन को रोकने के लिए यहाँ दक्षिणपंथी बंदूकधारियों ने 36 लोगों को शहीद कर दिया था। इस जगह पर मई दिवस के प्रदर्शन रोकने के लिए हर वर्ष की तरह इस बार भी सरकार ने जोरदार ताकत झोंकी थी। अमेरिकी साम्राज्यवादी हुक़्मरानों ने खुफिया एजंसियों और अन्य ढंगों से सरकार की मदद की। इंस्ताबुल शहर में लगभग 25 हजार पुलीस बल तैनात किया गया। हैलीकॉप्टर प्रदर्शनकारियों की निशानदेही करने के लिए शहर के ऊपर मँडरा रहे थे। तकसीम चौक पर मज़दूरों को पहुँचने से रोकने के लिए दमन किया गया। पुलिस के एक ट्रक ने एक बुजुर्ग प्रदर्शनकारी को टायरों तले कुचल दिया। दो सौ अधिक प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

मई दिवस की जन्मभूमि अमेरिका में भी मज़दूरों ने अनेक जगहों पर बड़े प्रदर्शन किये। सिएटल में कई हजार मज़दूरों ने एकजुट होकर मज़दूर अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई। वे प्रवासियों के अधिकारों के लिए जोरदार आवाज़ बुलन्द कर रहे थे। प्रदर्शनकारियों में राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार डोनाल्ड ट्रम्प द्वारा प्रवासी मज़दूरों के खिलाफ़ भड़काई जा रही नफरत के खिलाफ़ आक्रोश था। प्रदर्शन को रोकने के लिए यहाँ भी पुलिस ने लाठीचार्ज किया, आँसू गैस के गोले फेंके, गिरफ़्तारियाँ कीं। उधर कनाडा में भी बड़े प्रदर्शन हुए और मज़दूरों-नौजवानों को दमन का सामना करना पड़ा।

सारे ब्रिटेन में मई दिवस पर प्रदर्शन हुए। इस दौरान अन्य मुद्दों के साथ-साथ यूरोप में फासीवादी ताकतों के खिलाफ़ आवाज़ उठाई गयी। ताईवान में हजारों मज़दूरों ने काम के घण्टे घटाने और वेतन वृद्धि के लिए प्रदर्शन किए। यूनान में सरकार द्वारा जनता की सहूलतें छीने जाने के खिलाफ़ मज़दूरों ने जोरदार आवाज बुलन्द की।

भारत में भी मज़दूर वर्ग ने बड़ी संख्या में मई दिवस आयोजनों में भागीदारी की। मज़दूर शहीदों को तहेदिल से याद किया गया, सरकार की मज़दूर विरोधी-जन विरोधी नीतियों के खिलाफ़ आवाज उठाई गयी। फासीवादी ताकतों द्वारा जनता को आपस में धर्म के नाम पर बाँटने और जनवादी अधिकारों के हनन के खिलाफ़ आवाज़ उठाई गयी। हमारे देश में औद्योगिक मज़दूर बड़े स्तर पर असंगठित हैं। जो संगठित भी हैं उनमें भी ज़्यादा प्रभाव नकली लाल झण्डों वाली पार्टियों व अन्य हुक़्मरान वर्गीय पार्टियों के साथ जुड़ी यूनियनों का है। क्रान्ति-पक्षधर अधिकतर पार्टियाँ/ग्रुप औद्योगिक मज़दूरों के आन्दोलन को ज़रूरी अहमियत नहीं देते। कुछ क्रान्तिकारी ग्रुप गम्भीरता से भारत से औद्योगिक मज़दूरों को संगठित करने में लगे हुए हैं। इन संगठनों ने जोश-खरोश के साथ मई दिवस मनाया। कई जगहों पर मई दिवस आयोजनों के लिए लम्बी मुहिमें चलाकर व्यापक मज़दूर आबादी को मई दिवस की महान विरासत के साथ जोड़ने की कोशिश की गयी। दुनिया के अन्य देशों की तरह भारत के मज़दूरों को भी मई दिवस की महान विरासत के साथ जोड़ने के लिए बहुत कुछ किया जाना ज़रूरी है। मई दिवस को रस्म अदायगी में बदल देने, अर्थवादी माँगों-मसलों से जोड़ कर इस दिन के क्रान्तिकारी महत्व को घटाने आदि की साजिशें से निपटने के लिए क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों काम करना होगा। हर साल मई दिन पर विश्व मज़दूर वर्ग के एक अच्छे-खासे हिस्से द्वारा प्रदर्शित जोश-खरोश हमें अथाह प्रेरणा देता है, ऊर्जावान करता है, मज़दूर वर्ग के रोशन भविष्य में हमारा विश्वास और पक्का करता है।

— लखविन्दर

पनामा पेपर्स मामला : पूँजीवादी पतन का एक प्रतिनिधि उदाहरण

अप्रैल के शुरुआती हफ्ते में 'पनामा पेपर्स' के नाम से जारी हुए दस्तावेज़ों ने इस समय पूरी वैश्विक राजनीति में एक तरह का भूकंप सा ला खड़ा किया है। फ़र्ज़ी कंपनियाँ बनाकर पूरे विश्व के धन-कुबेर किस तरीके से अपनी कमाई को टैक्सों से बचाते हैं, यही इज़हार हुआ है पनामा की एक कंपनी 'मोसाक फोंसेका' के बारे में हुए खुलासे से। ये खुलासे इतिहास के इस तरह के सबसे बड़े खुलासे बताए जा रहे हैं क्योंकि कुल दस्तावेज़ों की गिनती 1।15 करोड़ से भी ज़्यादा है। इन खुलासों से इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था की सड़न नज़र आती है क्योंकि इन खुलासों में कोई एक-आध दर्जन व्यक्तियों मात्र के नाम नहीं है बल्कि पूरे विश्व में फैले इस फ़र्ज़ी कारोबार की कड़ियाँ पूँजीपतियों, राजनेतायों, फ़िल्मी कलाकारों, खिलाड़ियों आदि से जुड़ी हैं।

इंग्लैण्ड, आइसलैंड, ब्राज़ील, रूस, चीन, भारत, पाकिस्तान, मध्य-पूर्व आदि सभ देशों के धनिकों के नाम इस सूची में दर्ज हैं। अमिताभ बच्चन से ले कर डेविड कैमरून तक, फुटबाल खिलाड़ी लिओनेल मैसी से लेकर अदाकार जैकी चैन, रूसी राष्ट्रपति पुतिन से लेकर चीनी पार्टी के मेंबरों के नाम, सबके सब इन खुलासों के ज़रिए नंगे हुए हैं। इन खुलासों के सामने आने के बाद कई देशों में लोग इन राजनेताओं के खिलाफ सड़कों पर आ गये हैं। आइसलैंड के प्रधानमंत्री सिगमंडर गन्लाउगसन को तो जन-दबाव के चलते अस्तीफा देना पड़ा। इसी तरह इंग्लैण्ड में भी डेविड कैमरून को कटघरे में खड़ा करने के लिए लोगों का दबाव बढ़ता जा रहा है।

चूँकि इस सूची में अमेरिका के किसी भी प्रतिनिधि का नाम नहीं आया और जिस तरह मीडिया रूस और चीन को ख़ास तौर से निशाना बना रहा है, उस से इन खुलासों के पीछे के राजनीतिक हितों के बारे में भी सवाल उठने शुरू हो गये हैं। बहरहाल, हित चाहे जो भी हों, इस सूची ने पूँजीवादी ढाँचे की एक और घिनौनी सच्चाई को व्यापक करने में सहायता की है।

इस समय पूरे विश्व में 90 से अधिक ऐसे देश हैं जिनके अन्दर विश्व के परजीवी पूँजीपति अपना पैसा निवेश करते हैं और यह खुलासे केवल एक छोटे से देश पनामा के हैं। ऐसे देशों को 'टैक्स हैवन' कहा जाता है, मतलब कि इन देशों के अन्दर टैक्स-दरें बेहद कम हैं, इसीलिए विश्व के सब बड़े पूँजीपति, फ़िल्मी हस्तियाँ, खिलाड़ी, तस्कर आदि, अपनी कमाई को इन देशों में गुप्त रूप से जमा करते रहते रहते हैं। इस कारोबार को सुचारू रूप से चलाने के लिए कई फर्जी, कागज़ी कम्पनियाँ बनाई जाती हैं जिनमें यह पैसा 'निवेश' होता है। 'मोसाक फोंसेका' एक ऐसी ही कंपनी है जिसका काम अन्य कम्पनियों की पैदावार करना है! मतलब, पूँजीपतियों के पैसे को फर्जी कंपनियों के माधियम से 'निवेश' करवाने के तरीके ईजाद करना है। इस सारी प्रक्रिया को पूँजीवादी न्याय व्यवस्था बिलकुल जायज मानती है (उदाहरण के लिए, पाकिस्तान के प्रधान मंत्री नवाज़ शरीफ का नाम आने के बाद उसका बचाव करते हुए पाकिस्तान के सूचना मंत्री ने कहा कि, "सब को अधिकार है कि वह अपनी संपत्ति के साथ जो मर्ज़ी करे... यह पाकिस्तानी कानून के अनुसार व अन्तराष्ट्रीय कानून के अनुसार कोई अपराध नहीं है")। इस मंत्री ने पूँजीवादी व्यवस्था की क्रूर सच्चाई को बड़े सीधे-स्पष्ट तरीके से बयान कर दिया।

इस पूरे मामले से दो बुनियादी सवाल उभर कर सामने आते हैं। पहला यह कि आर्थिक संकट के इस दौर में विकसित देशों की सरकारें खर्च घटाने की नीतियों को लागू कर रही हैं, स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्चा लगातार कम किया जा रहा है, बच्चों के लिए प्राइमरी स्कूल खोलने से सरकारें इनकार कर रही हैं, पेंशनों पर हमले किये जा रहे हैं, लाइब्रेरियाँ बंद की जा रही हैं और सरकारी इमारतों/संग्रहालयों को भी नीलाम किया जा रहा है, और यह सब पैसे की कमी के बहाने किया जा रहा है। टैक्सों का बोझ आम जनता के ऊपर लादा जा रहा है। वैसे तो पहले ही आमदनी के ऊपर लगने वाले टैक्स से सरकार की आय बहुत कम होती है, ऊपर से यह धनी पूँजीपति इसी टैक्स को बचाने के लिए अपनी पूँजी इन 'टैक्स हैवन' में 'निवेश' करते हैं। एक तो पहले ही सरकार उनको तमाम तरह की रियायतें देने के लिए आम जनता के टैक्स में से बड़ा हिस्सा खर्च करती है और जब इन सहूलतों का इस्तेमाल करके यह पूँजीपति बड़े मुनाफे कमाते हैं तो उसमें से टैक्स देना भी गवारा नहीं समझते!

'टैक्स जस्टिस नेटवर्क' के एक अध्यन के मुताबिक इस समय विश्व-भर की कुल संपति का 8.13% हिस्सा इन टैक्स हैवन्स में लगा हुआ है जो तकरीबन 30 खरब डालर बनता है और इस आँकड़े में भी लगातार इजाफा होता जा रहा है। यदि इस आँकड़े को सन्दर्भों में रखकर देखें तो बेहतर समझ आयेगा -

*** यदि पूरे विश्व में से गरीबी को ख़त्म करना हो तो 20 साल तक के लिए सालाना तकरीबन 175 अरब डालर की ज़रूरत पड़ेगी। इस तरह कुल खर्चा (लगभग 3,500 अरब डालर) टैक्स हेवन्स में पड़ी संपति का तकरीबन नौवां हिस्सा (1 खरब = 1,000 अरब) ही बनता है।**

*** यदि विश्व में से भुखमरी को ख़त्म करना है तो हर साल तकरीबन 30 अरब डालर की ज़रूरत है, मतलब इन हेवन्स में लगी रकम का 1,000 वां हिस्सा।**

*** विश्व की 40% आबादी के पास पीने वाले साफ़ पानी की भी सुविधा नहीं है। विश्व के सभी लोगों को साफ़ पानी मुहैया करवाने का खर्चा 10 अरब डालर सालाना है, मतलब टैक्स हैवन्स में लगी रकम का 3,000वां हिस्सा।**

लेकिन ये सभी सिर्फ आँकड़े हैं जिनके साकार होने की गुंजाइश इस पूँजीवादी ढाँचे के भीतर नहीं है क्योंकि स्वास्थ्य सुविधाओं को मुनाफे पर बेचकर, लोगों को बीमार रखकर ही तो यह मुनाफे पर टिका प्रबंध चल रहा है। इस लिए शासक वर्ग खुद कभी यह सारे खर्चे करेगा, इसकी कोई संभावना नहीं क्योंकि ऐसा होने से पूरे पूँजीवादी ढाँचे की बुनियाद हिल जायेगी।

दूसरा सवाल जो इस पूरे मामले में से उभरा है वह है इस समस्या के समाधान का। कई लोगों का मानना है कि अमीरों के ऊपर टैक्स दरों को बढ़ाकर और सख्ती के साथ वसूलने का नियम बनाकर इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। लेकिन आज के वैश्वीकरण के इस संकटग्रस्त दौर के अन्दर ऐसी कल्पना करना भी बेकार है। अमली तौर पर ऐसी किसी योजना की अव्यवाहिरिकता हमारे सामने फ्रांस की मिसाल के रूप में मौजूद है। फ्रांस के राष्ट्रपति फ्रांस्वा ओलान्दे ने 2012 के अपने चुनाव प्रचार के दौरान यह वायदा किया था कि वह चुने जाने पर उन पूँजीपतियों के ऊपर 75% टैक्स लागू करवायेगा जिनकी आमदनी 10 लाख यूरो सालाना से अधिक है। पूँजीपतियों की ओर से यह कहकर दबाव बनाया गया कि ऐसा होने की सूरत में वह फ्रांस में अपने व्यापार को बंद करके अपनी पूँजी दूसरे देशों में ले जायेंगे। इस दबाव के चलते पहले तो ओलान्दे इस दर को 50% पर ले आया और अंतत: इस पूरी योजना को ही ठन्डे बसते में डाल दिया।

इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं कि अमीरों के ऊपर अधिक टैक्सों की माँग नहीं उठायी जानी चाहिए। ऐसी माँग बिलकुल उठानी चाहिए लेकिन साथ ही साथ पूँजीवादी ढाँचे के भीतर इसकी सीमा को भी समझना चाहिए। इसी तरीके से ही यह ढाँचा लोगों के बीच से अपनी सार्थकता खो देगा। चूँकि मौजूदा समय में बड़े स्तर पर कोई सच्ची क्रन्तिकारी पार्टी मौजूद नहीं है जो इस मुद्दे की अगवाई कर सके, इसीलिए इन खुलासों के बाद कुछ ख़ास नहीं बदलेगा। जिनके नाम इस सूची में आये हैं, उनमें से एक-दो को छोड़कर (और शायद वह भी नहीं!) किसी का बाल भी बाँका ना होगा और टैक्स से बचने का यह कारोबार पहले की तरह चलता रहेगा, ना केवल पनामा में ही बल्कि सभी जगहों पर। लेकिन इतना तय है कि आज के समय में यह पूँजीवादी ढाँचा जितना संकटग्रस्त है, यह लगातार ऐसे मौके देता जा रहा है जिनका इस्तेमाल इस को इसके अंजाम तक पहुँचाने के लिए किया जा सकता है। आज ज़रूरत है ऐसी क्रान्तिकारी ताकतों की जो ऐसे मौकों को समय रहते सँभाल सकें और लोगों के बीच इस गले-सड़े ढाँचे को और नंगा कर सकें।

— मानव

'आधार' – जनता के दमन का औज़ार

(पेज 5 से आगे)

समर्थकों, शुभचिन्तकों को दमन का शिकार बनाने के लिए आधार का हर तरह से इस्तेमाल किया जाएगा।

सरकारी तंत्र में असर-रसूख के बिना इण्टनेट पर उपलब्ध आधार केन्द्रीय डाटाबेस पर पड़ी जानकारी को भेद पाना देशों-विदेशों के हैकरों के लिए कौन सी मुश्किल बात है? सरकार चाहे इस जानकारी के सुरक्षित होने की कितनी भी बात करती रहे लेकिन यह असुरक्षित है। अनेकों माहिर व्यक्ति इस बात की पुष्टि कर चुके हैं। इस सम्बन्धी अनेकों लेख छप चुके हैं। भारत सरकार की इस परियोजना का एक गुप्त दस्तावेज, गुप्त दस्तावेजों को लीक करने वाली वेबसाइट विकीलीकस के जरिए लीक हो चुका है। यह दस्तावेज मानता है कि आधार जानकारी लीक होने और इसमें छेड़छेड़ होने की सम्भावनाएँ हैं। लोगों की निजी जानकारी की सुरक्षा, निजी गुप्तता के जनवादी अधिकार की गारण्टी करना, लोगों की सुरक्षा की गारण्टी करना जनविरोधी सरकार का लक्ष्य है भी नहीं। वास्तविक मकसद जनता की जिन्दगी में दखल देना है, लोगों की जासूसी करना है, जनता की सत्ता विरोधी, सरकार विरोधी, लूट-खसूट-अन्याय विरोधी हर सक्रियता को दबाने की बेहिसाब ताकत हासिल करना है।

जहाँ तक लोगों को आधार कार्ड के जरिए सरकारी सहूलतें-सब्सिडियाँ आदि फायदे पहुँचाने का स्वाल है यह सरासर बकवास है। मौजूदा उदारीकरण-निजीकरण के दौर में सरकार लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, पानी, बिजली, साफ़-सफाई आदि बुनियादी जरूरतों से जुड़ी सरकारी सहूलतों-सब्सिडियों का बड़े स्तर पर खात्मा कर चुकी है और कर रही है। ऐसे समय में लोगों को सहूलतें पहुँचाने की बात करना हास्यास्पद बात है। आधार कार्ड के जरिए तो कम से कम 15 करोड़ लोग तो अपनी पहचान ही साबित नहीं कर पायेंगे। कृषि, निर्माण, और हाथों से कठोर काम करने वाले लोगों की उँगलियों के निशान काफी घिस जाते हैं, मद्धम पड़ जाते हैं जिन्हें सैंसर उठा नहीं पायेंगे। सैंसरों पर उँगलियों के कम-ज़्यादा दबाव, उँगलियाँ रखे जाने की दिशा, जरूरत से अधिक सूखी या चिकनाहट वाली चमड़ी आदि भी निशान मिलाये जाने में गम्भीर दिक्कतें हैं। इन दिक्कतों के बारे में आधार अथारिटी के दस्तावेजों में भी माना गया है। आँखों की पुतलियों का स्कैन अंधों, मोतिया बिन्द से ग्रस्त, आँखों में निशान वाले आदि लोगों पर नहीं किया जा सकता। और सैंसरों और स्कैनरों को धोखा दिया जा सकता है। अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, चीन, कनाडा, जर्मनी जैसे देशों ने ऐसे प्रोजेक्ट लागू करनी की असफल कोशिश के बाद इसे अव्यावहारिक, नाजायज व खतरनाक माना है। लेकिन भारत के हुक्मरान फिर भी इसे लागू कर रहे हैं।

सरकारी सुविधाओं का फायदा लोगों तक न पहुँचने का कारण यह नहीं है कि लोग अपनी पहचान सिद्ध नहीं कर पाते। इसका कारण यह है कि समाज के मुट्ठी भर लोग समाज के समाज के स्रोत-संसाधनों पर नियंत्रण रख रहे हैं। यह मुट्ठीभर तबका सारे फायदे ले जाता है। सरकारी सहूलियतों का मुख्य रूप से कानूनी-गैरकानूनी ढंग से यही तबका फायदा ले रहा है। उदाहरण के तौर पर गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार पक्के राशन कार्ड होने के बावजूद भी अनाज का पूरा कोटा हासिल कर पाने में अक्षम होते हैं क्योंकि राशन डिपो के इंजार्ज उनकी लूट करते हैं। वह गरीबों को मज़बूर करते हैं कि वे अपने कोटे से कम लें (लिखवायें ज़्यादा)। दलित छात्रों को लगे वजीफे उन्हें इसलिए हासिल नहीं होते कि वे अपने दलित होने का सबूत नहीं दे पाते बल्कि स्कूलों-कालेजों का प्रशासन अनेकों ढंगों से उनका वजीफा मार जाता है। लोगों को सहूलियतें पहुँचाने के लिए आधार कार्ड की जरा भी जरूरत नहीं है। ऐसा पहले से मौजूद प्रमाणपत्रों के जरिए भी किया जा सकता है बशर्ते कि ऐसा करने के लिए एक जनपक्षधर आर्थिक-राजनीतिक ढाँचा मौजूद हो।

भारत के जनविरोधी हुक्मरानों ने जनता के जनवादी अधिकारों-आज़ादी के खिलाफ़ एक जंग छेड़ी हुई है। जनता के खिलाफ़ इस जंग में हुक्मरान तरह-तरह के हथकण्डे अपना रहे हैं। पहले से बने दमनकारी कानूनों का इस्तेमाल बढ़ चुका है। नये-नये दमनकारी काले कानून-नियम जारी किये जा रहे हैं। दमन के औज़ारों के भण्डार में आधार को भी शामिल किया गया है। मौजूदा फासीवादी उभार के समय में जब राज्यसत्ता की हिमायत प्राप्त हिन्दुत्ववादी अँधराष्ट्रवाद व साम्प्रदायिकता का बोलबाला है, जब जनता के विचारों की अभिव्यक्ति की आज़ादी, अधिकारों के लिए संगठित होने व संघर्ष करने के संविधानिक-जनवादी अधिकारों पर राज्यसत्ता द्वारा जोरदार हमले हो रहे हैं ऐसे फासीवादी उभार के समय में देश के पूँजीवादी हुक्मरानों के हाथ में आधार जैसा दमन का औजार आना एक बेहद चिंताजनक बात है। जनता को हुक्मरानों के इस हमले से परिचित कराना, इसके खिलाफ़ जगाना, संगठित करना बहुत ज़रूरी है।

— रणबीर

(पेज 10 पर जारी)

भविष्य निधि पर गिद्ध दृष्टि डालने वाली मोदी सरकार के ख़िलाफ़

बेंगलुरु की स्त्री गारमेंट मज़दूरों ने संभाली कमान, सरकार को झुकाया

(पेज 1 से आगे)

बात स्पष्ट हो जायेगी।

क्या आप जानते हैं कि 'गैप', 'हेंस एंड मॉरिज़', 'ओल्ड नेवी', 'बनाना रिपब्लिक', 'जे सी पेनी', 'ज़ारा', 'टेस्को' और 'वालमार्ट' जैसे अंतर्राष्ट्रीय ब्रांड अपने कपड़े मुख्यत: तीसरी दुनिया के देशों यानि चीन, बांग्लादेश, वियतनाम, भारत, मेक्सिको, मलेशिया, पाकिस्तान आदि विकासशील देशों में बनवाते हैं। और इसके पीछे सबसे बड़ा कारण है इन मुल्कों की सस्ती श्रमशक्ति। इन सभी देशों में मज़दूरों के लिए काम करने की परिस्थितयाँ कमोबेश ख़राब ही हैं। तकरीबन दो साल पहले बांग्लादेश के ढाका में राना प्लाज़ा नाम की बहुमंजिला इमारत गिर जाने से उसमें काम करने वाले 1000 से ज़्यादा गारमेंट कामगारों की मौत हम भूल नहीं सकते। वैसे इन्हें मौत नहीं बल्कि नरसंहार कहा जाना चाहिए। और बात केवल बांग्लादेश की ही नहीं है, फैक्ट्री मालिकों के लिए मज़दूर किसी भेड़-बकरी से ज़्यादा कुछ नहीं होते, बांग्लादेश हो या चीन, पाकिस्तान हो या भारत!

अगर आप गुड़गाँव, तिरुपुर, बेंगलुरु या ऐसी ही किसी जगह रहते हैं जहाँ गारमेंट फैक्ट्री लगी हो तो आपको इस क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के हालात का थोड़ा-बहुत अंदाज़ा तो निश्चित तौर पर होगा। इन कारखानों में काम करने वाले ज़्यादातर कामगार इतनी कम मज़दूरी पर काम करते हैं कि जिन बड़े-बड़े ब्रांड्स के लिए वो कपड़े बनाते हैं उसे ख़ुद से खरीदने का केवल सपना ही देख सकते हैं। सुपरवाइज़रों के द्वारा कामगारों के साथ गाली-गलौज करना तो आम बात है, कभी कभी वो धक्का-मुक्की और मार-पीट तक उतर आते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि दिन-रात हाड़-मांस गलाकर खटने के बावजूद औसतन मात्र 7000 से 8500 रुपये तक की मासिक तनख्वाह पर काम करने वाले ये मज़दूर अपनी मेहनत के साथ ही अपना आत्मसम्मान, अपनी आत्मा भी बेच डालने के लिए मजबूर होते हैं। इन कारखानों में मुख्यतः टारगेट के आधार पर काम लिया जाता है, मसलन ऑनलाइन समाचार पोर्टल 'स्क्रॉल' में छपी रिपोर्ट के अनुसार 'गैप' ब्रांड के लिए कपड़े बनाने वाली बेंगलुरु की एक फैक्ट्री में काम करने वाली जयम्मा बताती हैं, "हर मज़दूर को कपड़े का एक हिस्सा सिलना होता है और उसे एक घंटे में 60 पीस ख़तम करना ही होता है।" वैसे ये टारगेट कपड़े के स्टाइल और काम की जटिलता पर निर्भर करता है और 80-100 पीस तक का टारगेट भी मज़दूरों को दिया जाता है। टारगेट पूरा ना होने पर सुपरवाइज़रों के द्वारा मज़दूरों को जलील किया जाना आम बात है। इतने ऊँचे टारगेट के दबाव में कामगार नाश्ता-पानी या शौचालय के लिए छोटा सा विराम तक नहीं ले पाते।

इन गारमेंट मज़दूरों के बीच काम करने वाली गारमेंट एंड टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन (जिसकी कुल सदस्य संख्या 8000 है) और एक ग़ैर-लाभकारी संगठन सेंटर फ़ॉर वर्कर्स मैनेजमेंट के द्वारा संयुक्त रूप से किये गये अध्ययन में पाया गया कि कई गारमेंट मज़दूर बेंगलुरु में किराया बहुत ज़्यादा होने के कारण शहर के बाहर कमरा लेकर रहते हैं। ऐसे में आने-जाने में उनको काफ़ी देर हो जाती है। ज़्यादातर मज़दूर सुबह 7 बजे निकल पड़ते हैं काम के लिए और रात में घर वापस पहुँचने तक 8 से 9 तक बज जाते हैं। शहर के अन्दर पहुँचते ही आने-जाने का किराया बहुत ज़्यादा हो जाता है। इसलिए बहुत से मज़दूर आधे घंटे से भी ज़्यादा पैदल चलकर कारख़ाना पहुँचते हैं। फिर इतना ही वापस जाते वक़्त भी चलना पड़ता है। कई बार महिला मज़दूर समूह बनाकर ऑटो बुक कर लेती हैं। मात्र तीन लोगों के ऑटो में 10 के आसपास महिला मज़दूरों का जाना आम बात है क्योंकि वर्तमान में ऑटो बुक करने का किराया बेंगलुरु में 13 रु/किमी है, ऊपर से ऑटो वाले कई बार निश्चित दर से ज़्यादा ही कीमत लेते हैं। अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार मज़दूरों के द्वारा बाहर फ़िल्म देखने जाना, किसी रेस्टोरेंट में अकेले या परिवार के साथ खाने जाना, किसी जगह घूमने जाना यानि मनोरंजन पर किया जाने वाला खर्च शून्य है, जिसकी वजह है पैसा और समय दोनों का अभाव। एक दिन की छुट्टी भी या तो ओवरटाइम करने, या घर का बाकी काम करने, या सप्ताह भर की थकान मिटाने में ही निकल जाता है। ऊपर हमने बताया कि कैसे कामगार बहुत ऊँचे टारगेट के चलते छोटे-मोटे विराम नहीं ले पाते। इस अध्ययन के अनुसार 60% कामगार तो अपना मध्याह्न भोजन भी छोड़ देते हैं। जबकि प्रति घंटे एक कपड़े पर आने वाली श्रम की कीमत, बाजार में उसके विक्रय मूल्य का महज 1% है। कॉल्स के लिए एक शर्ट बनाने में जहाँ मात्र 16 रुपये 88 पैसे लगते हैं वहीं कॉल्स इसे बाजार में 32 डॉलर (यानी करीब 2130 रुपये) में बेचता है। इतने ज़्यादा काम के दबाव में हर मज़दूर औसतन 5 बार साल में बीमार पड़ जाता है। मज़दूरों को होने वाली क्रॉनिक (दीर्घकालिक) बीमारियों में मुख्य वजह काम करने की परिस्थितयाँ होती हैं, जिसमें पैरों में दर्द का बना होना सबसे सामान्य है, इसके अलावा लगातार बुखार, थकान, पीठ दर्द, पेट की बीमारियाँ, स्त्री रोग इत्यादि भी काफ़ी मज़दूरों में पाये जाते हैं।

इतनी अमानवीय परिस्थितियों में और इतनी कम मज़दूरी पर काम करने वाले मज़दूरों को यूनियन तक नहीं बनाने दिया जाता। यूनियन बनाने से रोकने के लिए मज़दूरों को वेतन रोक देने और फैक्ट्री बंद कर देने की धमकियाँ दी जाती हैं। किसी मज़दूर के द्वारा यूनियन से जुड़ जाने पर उसको परेशान किया जाता है और उसका टारगेट भी बढ़ा दिया जाता है। हालात ऐसे हैं कि बेंगलुरु और इसके आस-पास की लगभग 800 फैक्ट्रियों में काम करने वाले तकरीबन 5 लाख गारमेंट मज़दूरों का केवल 3% हिस्सा यानि मात्र 15000 मज़दूर ही किसी यूनियन से जुड़े हैं। पर इन सबके बावजूद जब इस बार केंद्रीय सरकार ने मज़दूरों की भविष्य निधि पर अपनी गिद्ध-दृष्टि डाली तो मानो पानी सर के ऊपर चला गया और बेंगलुरु के 1।25 लाख गारमेंट मज़दूर सड़कों पर उतर आये। आइये इस वर्ष की इस अत्यंत महत्वपूर्ण घटना पर एक सरसरी निगाह डालते हैं।

कैसे फैली बेंगलुरु में विरोध प्रदर्शन की आग

कर्मचारी भविष्य निधि बचत का एक साधन होती है जिसमें हर माह कर्मचारी और उसके नियोक्ता (नौकरी देने वाला) दोनों के ही द्वारा मूल वेतन का 12% जमा किया जाता है। नियोक्ता के द्वारा जमा किये गये हिस्से का 8।33% पेंशन कोष में चला जाता है और बाकी 3।67% भविष्य निधि में। केंद्र सरकार ने इसी साल 10 फरवरी को अधिसूचना जारी कर इस 3।67% वाले हिस्से को कर्मचारी के द्वारा 58 साल की उम्र हो जाने से पहले निकाले जाने पर रोक लगा दी थी। मासिक तनख्वाह काफ़ी कम होने की वजह से इन मज़दूरों के लिए भविष्य निधि घर में शादी पड़ने, किसी के बीमार पड़ जाने या किस अन्य इमरजेंसी की परिस्थिति में बहुत सहायक सिद्ध होती है। और ऐसे में इसके किसी भी हिस्से को सेवा-निवृत्ति तक रोका जाना मज़दूरों के लिए कष्टकारक ही होगा। लेकिन पूँजीपतियों के अच्छे दिनों को लाने के लिए जी जान से जुटी मोदी सरकार मज़दूरों की ज़िन्दगी की रही-सही सुरक्षा भी छीन लेने पर उतारू है।

बेंगलुरु के होसुर रोड के पास स्थित शाही एक्सपोर्ट्स प्रा। लि। के कुछ मज़दूरों ने जब एक स्थानीय कन्नड़ अख़बार में भविष्य निधि के एक हिस्से की निकासी पर रोक लगाने की ख़बर पढ़ी तो उन्होंने तत्परता दिखाते हुए उस ख़बर की फोटोकॉपी कराई और उन कॉपियों को बाकी मज़दूरों में वितरित कर दिया। जिसके बाद 18 अप्रैल को शाही एक्सपोर्ट्स के मज़दूर धरने पर बैठ गये। ये ख़बर जब शाही एक्सपोर्ट्स की ही 80 किमी दूर बोम्मानाहल्ली स्थित एक दूसरी इकाई में पहुँची तो वहाँ के मज़दूर भी सड़कों पर उतर आये। इस इलाके में बहुत सारी गारमेंट फैक्ट्रियाँ हैं और धीरे-धीरे लगभग लाख के आसपास मज़दूर सड़कों पर पहुँच चुके थे। दूसरे दिन पुलिस द्वारा कुछ मज़दूरों को पीटे जाने और कई मज़दूरों को हिरासत में लिए जाने पर विरोध प्रदर्शन और ज़्यादा तीव्र हो गया।

बताते चलें कि बेंगलुरु के टेक्सटाइल्स उद्योग में काम करने वाले 5 लाख मज़दूरों में से तकरीबन 4 लाख मज़दूर महिलायें हैं, और कुछ ऐसा ही अनुपात हमें विरोध प्रदर्शन के दौरान सड़कों पर भी देखने को मिला। इतनी भारी संख्या में महिलाओं की भागीदारी की वजह से कोई उम्मीद कर सकता है कि पुलिसिया दमन थोड़ा सीमित रहा होगा। पर ऐसा नहीं है। आन्दोलन को कुचलने के लिए पुलिस ने कोई कोर-कसर बाकी न रखी। आन्दोलन के दौरान की ही एक वीडियो इन्टरनेट पर वायरल हुई जिसमें स्पष्ट रूप से दिख रहा है कि कैसे पुलिस मज़दूरों पर बेतहाशा लाठी चार्ज करके उन्हें धरना-स्थल से भगा रही है। असल में पहले ही दिन शाही-एक्सपोर्ट्स के कामगारों को पुलिस ने डंडे के दम पर छितर-बितर करने की कोशिश की जिससे एक गर्भवती मज़दूर को अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। मगर अपनी लाख कोशिशों के बावजूद पुलिस आंदोलित मज़दूरों का हौसला नहीं तोड़ पायी। आन्दोलन ने भाजपा नीत केंद्र की गठबंधन सरकार को तात्कालिक तौर पर प्रतिक्रिया देने पर बाध्य कर दिया और सरकार ने अपने फैसले को तीन महीने के लिए निलंबित कर दिया, मगर इस धोखे और दिखावे वाली प्रतिक्रिया पर आन्दोलन और तेज हो गया और अंतत: सरकार ने हार मानते हुए भविष्य निधि सबंधी अधिसूचना वापस ले ली।

मीडिया और मध्यवर्ग का रवैया

इस बीच तमाम बुर्जुआ अख़बारों और टीवी समाचार चैनलों की बात की जाय तो असल में राष्ट्रीय मीडिया में तो इस घटना को नाममात्र ही कवरेज मिली। स्थानीय अख़बारों और चैनलों ने इसे कवर किया भी तो अपनी वर्ग पक्षधरता जाहिर करते हुए ऐसे पहलुओं पर ही ज़्यादा जोर दिया जिनसे मज़दूरों की मांगों और समस्याओं का कोई ख़ास

(पेज 9 पर जारी)

बेंगलुरु के गारमेंट मज़दूरों ने सरकार को झुकाया

(पेज 8 से आगे)

लेना देना नहीं था। मसलन, 'गारमेंट मज़दूरों ने किया रोड ब्लॉक', 'प्रदर्शन कर रहे मज़दूर हुए हिंसक', 'मज़दूरों ने किया सार्वजनिक संपदा का नुक्सान', इत्यादि। किसी भी अन्य आन्दोलन की तरह पुलिसिया दमन की स्थिति में सड़क पर पड़े कंकड़-पत्थर के टुकड़ों को फेंके जाने की घटना को ऐसे दिखाया गया मानो मज़दूर भी पुलिस वालों का दमन करने पर उतर आये हों या मानो मज़दूर भी आधुनिक राइफल लेकर धरने पर बैठे हों।

दूसरी तरफ़ मध्य और उच्च मध्य वर्ग अपनी सहज वर्ग चेतना के कारण शासक वर्गों की पढ़ी पढ़ाई बातें जपने में व्यस्त रहा, मसलन 'मज़दूरों को कानून की मदद लेनी थी, ऐसे सड़कों को जाम करके देश का नुक्सान ही हो रहा है'। कूपमंडूकता का परचम फ़हराने वाले इन 'देशभक्तों' को इस बात से बिल्कुल फ़र्क नहीं पड़ता कि जो ब्रांडेड कपड़े पहन कर वे इतराते हैं वो इन्हीं मज़दूरों के खून-पसीने से बनता है।

मज़दूरों पर 'हत्या के प्रयास' का केस दर्ज; राज्यसत्ता, पुलिस और कारखाना प्रबंधनों की खुली नंगई

मज़दूरों के इस व्यापक जनउभार और पुलिसिया दमन के ख़िलाफ़ उनके जुझारू संघर्ष से बौखलाए कारखानों के प्रबंधन और पुलिस ने आपसी मिलीभगत से दंगा, सार्वजनिक संपदा को नुक्सान, नौकरशाहों की प्रताड़ना के साथ हत्या के प्रयास तक की धाराओं के अंतर्गत मज़दूरों के ख़िलाफ़ प्राथमिकी दर्ज की है। इसी बीच अपना जनविरोधी चरित्र जाहिर करते हुए कर्नाटक के कांग्रेस पार्टी की सरकार के मुख्यमंत्री सिद्दारमैया और गृह मंत्री परामेश्वरा ने एक जैसे बयान देते हुए कहा कि पुलिस ने गारमेंट मज़दूरों के प्रदर्शन को काफ़ी कुशलता से सँभाला। आइये इस 'कुशलता' की एक बानगी देखते हैं। इंडियन एक्सप्रेस की वेबसाइट पर प्रकाशित ख़बर के अनुसार एक एन।जी।ओ। एमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया द्वारा 18 गारमेंट महिला मज़दूरों से पूछताछ पर उन सबका कहना था कि उन्होंने पुलिस को शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे मज़दूरों को गालियाँ देते और पीटते देखा। इन्हीं में से पीन्या इलाके में प्रदर्शन करने वाली एक मज़दूर का कहना है, "पुलिस ने अपने डंडे से हमारे गुप्तांगों पर प्रहार किया। एक पुलिस वाले ने कहा, "वेश्या कहीं की, तुझे गारमेंट फैक्ट्री में काम करने से क्या दिक्कत है?" स्पष्ट है कि केंद्र सरकार द्वारा मज़दूरों की मांगों पर शुरू में बेहद बेरुखी दिखाते हुए मात्र तीन महीने के लिए भविष्य निधि सम्बन्धी अधिसूचना टाल देने के अलावा पुलिस का भी मज़दूरों को उकसाने में बहुत बड़ा रोल रहा। मगर जहाँ एक तरफ़ कर्नाटक की जनविरोधी सरकार पुलिस की तारीफ़ कर रही है वहीँ दूसरी ओर अभी भी 200 से ऊपर की संख्या में मज़दूर जमानत नहीं मिल पाने के कारण जेल में सड़ रहे हैं क्योंकि इन मज़दूरों के ख़िलाफ़ दंगा करने के साथ-साथ हत्या के प्रयास का ग़ैर-ज़मानती केस भी दर्ज किया गया है। पुलिस पीन्या और बोम्मानाहल्ली इलाकों के कारखानों में जा रही है और अपनी मर्जी से किसी भी मज़दूर को उठा के ले जा रही है। जुझारू आचरण वाले मज़दूरों को कारखाना प्रबंधन स्वेच्छा से पुलिस को सौंप रहा है।

स्वत:स्फूर्त आन्दोलन

हम पहले ही ज़िक्र कर चुके हैं कि कुल 5 लाख मज़दूरों का एक बहुत छोटा सा हिस्सा ही किसी यूनियन से जुड़ा है। इस लिहाज से इस आन्दोलन की सबसे ख़ास बात रही इसकी स्वत:स्फूर्तता। थोड़ा सा गहराई में जाकर आकलन किया जाए तो ये समझना कठिन नहीं कि बिना किसी नेतृत्व के जंगल की आग की तरह फैले इस आन्दोलन के पीछे भविष्य निधि सम्बंधित अधिसूचना तो एक तात्कालिक वजह मात्र थी, असल में ये आन्दोलन काम करने से लेकर रहने-खाने तक की निहायत ही प्रतिकूल परिस्थितियों (जिनका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं) की वजह से मज़दूरों में लम्बे समय से व्याप्त असंतोष की भी अभिव्यक्ति थी। इस बात को समझ लेने पर किसी स्वत: स्फूर्त नेतृत्वविहीन आन्दोलन की सीमा भी हमें समझ में आ जाती है। किसी फ़्लैश बिंदु की तरह पटल पर उपस्थित होकर तुरंत ख़त्म हो जाने वाले इस आन्दोलन में किसी क्रांतिकारी नेतृत्व की कमी निश्चित तौर पर खली। अन्यथा इस आन्दोलन को मात्र भविष्य निधि सम्बन्धी अधिसूचना वापस लेने की मांग तक ही सीमित ना रखते हुए, इसे मज़दूरों-दलितों-छात्रों-स्त्रियों के व्यापक सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक हितों से जोड़ते हुए एक दीर्घकालीन और बड़े आन्दोलन में तब्दील किया जा सकता था। पर भारत में पहले से ही काफ़ी कमजोर पड़ चुके क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के बाद भी अभी बहुत से लोग कठमुल्लावाद से आज़ाद नहीं हो पाये हैं। वरना लाखों लाख की आबादी में बसने वाले मज़दूरों के रिहायशी इलाकों में काम करने की असीम संभावनाएँ हैं।

वैसे तो बेगलुरु में सभी केंद्रीय ट्रेड यूनियनों की उपस्थिति है। पर संशोधनवाद की गटरगंगा में डुबकी लगाती यूनियनों का असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों पर कोई प्रभाव तो वैसे भी नहीं है, और जहाँ कहीं थोड़ी बहुत पहुँच इनकी है भी तो ये संशोधनवादी अर्थवाद से आगे कभी बढ़ ही नहीं पाते, या दूसरे शब्दों में अर्थवाद से आगे बढ़ना ही नहीं चाहते। मज़दूरों में राजनीतिक चेतना का प्रसार करना तो बहुत दूर की बात है, आज इन केंद्रीय ट्रेड यूनियनों का नेतृत्व ही बुरी तरह से वैचारिक रूप से दरिद्र होता है। और अगर वैचारिक दरिद्रता ही काफ़ी नहीं थी तो इनके कुछ नेता तो फैक्ट्री के मालिकों से दलाली तक करते हुए पाये जाते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ट्रेड यूनियन 'भारतीय मज़दूर संघ' को तो बनाया ही गया है भारतीय मज़दूर आन्दोलन को पूँजीपतियों का पिछलग्गू बना देने के लिए। इस यूनियन का महासचिव गारमेंट मज़दूरों के आन्दोलन को एक 'राजनीतिक साज़िश' करार देता है और कहता है कि अन्य राज्यों में जब विधान सभा चुनाव चल रहे हैं ऐसे में महिला मज़दूरों को आन्दोलन करने के लिए 'गुमराह' किया गया था।

बहरहाल, घर, कारखाने से लेकर पूरे समाज में कदम कदम पर पितृसत्ता और बर्बर पूँजीवाद का दंश झेलने वाली महिला मज़दूरों ने इस आन्दोलन की अगुआई की, पुलिसिया दमन का डटकर सामना किया और अपने हक़ की एक छोटी लड़ाई भी जीती। यह छोटी लड़ाई मज़दूर वर्ग के भीतर पल रहे जबर्दस्त गुस्से का संकेत देती है। इस आक्रोश को सही दिशा देकर महज़ कुछ तात्कालिक माँगों से आगे बढ़कर व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में मोड़ने की चुनौती आज के दौर की सबसे बड़ी चुनौती है।

— शिशिर गुप्ता

सरकार की कठोर पूँजीवादी नीतियों के खिलाफ़

फ्रांस के लाखों मज़दूर, नौजवान, छात्र सड़कों पर

फ्रांस की राजधानी पेरिस के मुख्य चौक पर लाखों मेहनतकशों और नौजवानों का हुजूम

पेरिस कम्यून की धरती फ्रांस में शोषणकारी हुक्मरानों के खिलाफ़ जनान्दोलनों की एक शानदार परम्परा रही है। समय-समय पर फ्रांसीसी जनता हुक्मरानों की जनविरोधी नीतियों का जबरदस्त विरोध करती रही है। पिछले दिनों मार्च-अप्रैल महीनों के दौरान भी फ्रांस के मज़दूरों, नौजवानों व छात्रों द्वारा मज़दूर विरोधी श्रम सुधारों, जनता से सरकारी सहूलतें छीनने आदि के खिलाफ़ फ्रांस भर में बड़े पैमाने पर जबरदस्त प्रदर्शन हुए हैं। पहली मई को भी फ्रांस में बड़े स्तर पर प्रदर्शन हुए हैं। इन प्रदर्शनों में दस लाख से अधिक मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों ने शमूलीयत की है। इस दौरान लोगों की पुलीस के साथ जबरदस्त झड़पें हुई हैं। प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने जमकर लाठियाँ बरसाई, आँसू गैस के गोले फेंके, बड़ी संख्या प्रदर्शनकारियों को गिरफतार किया लेकिन हाकिमों का दमन जनाक्रोश को शांत नहीं कर पाया है। सबसे जबरदस्त प्रदर्शन फ्रांस की राजधानी पेरिस में हुए हैं।

फ्रांस में इस समय बेरोज़गारी बहुत बड़े स्तर पर फैली हुई है। फ्रांस के करीब 25 प्रतिशत नौजवान बेरोजगार हैं। बहुत मज़दूरों और नौजवानों को बहुत कम तनखाहों पर और कठोर शर्तों पर गुजारे के लिए निजी कम्पनियों को अपना कीमती श्रम बेचना पड़ता है। छात्रों को अपने भविष्य की चिन्ता सता रही है। बेहतरी के लिए बदलाव की उम्मीद में फ्रांस की साधारण जनता ने खुद को वामपन्थी कहने वाली पार्टियों को वोट दी। नतीजे के तौर पर मार्च 2014 में समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में तथाकथित वामपन्थी गठजोड़ की सरकार बनी थी। लेकिन सरकार बनने के बाद तथाकथित वामपन्थियों का पूँजीपरस्त वास्तविक चेहरा जनता के सामने आया जब इन्होंने पूँजीपतियों के पक्ष में जनता के अधिकारों पर बड़े स्तर पर कटौती के सिलसिले को ही आगे बढ़ाया। अब फ्रांसीसी सरकार मज़दूरों के कानूनी श्रम अधिकारों पर बड़े स्तर पर डाका मारने जा रही है। फ्रांस की

जनता ने सरकार की इस मज़दूर विरोधी कार्रवाई का डटकर विरोध किया है।

फ्रांस की सरकार व पूँजीपतियों का कहना है कि वहाँ श्रम कानून बहुत सख्त हैं जिनके चलते पूँजीपतियों को निवेश करने व अधिक मज़दूरों को काम पर रखने सम्बन्धी समस्याएँ आती हैं। अगर श्रम कानूनों को ढीला कर दिया जाए तो बेरोजगारी की समस्या हल हो जाएगी। ऐसा कहते हुए फ्रांसीसी सरकार नया कानून ला रही है जिसके जरिए मज़दूरों के कानूनी श्रम अधिकारों पर बड़े स्तर पर कटौती करने की कोशिश की जा रही है। छँटनी करने पर मज़दूरों को दिए जाने वाले मुआवजे पर कट लगाया जा रहा है। मज़दूरों व मालिकों के विवादों में पूँजीपतियों की टाँग और ऊपर करने के लिए नियम बनाए जा रहे हैं। फ्रांस की बहुसंख्या जनता सरकार के इन कदमों के खिलाफ़ है। लेकिन सरकार अड़ियल रुख अपनाते हुए मज़दूर विरोधी श्रम सुधारों को लागू करने पर बजिद है। पहले ही बेरोजगारी के सताए लोगों का सरकार के रवैये के कारण गुस्सा और भड़क उठा है। विभिन्न ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर श्रम सुधारों के खिलाफ़ हुए प्रदर्शनों में बड़ी संख्या में नौजवान-छात्र स्वंसफूर्त ढंग से शामिल हुए हैं।

फ्रांस के इस घटनाक्रम ने एक बार पिर यह स्पष्ट कर दिया है कि पूँजीवादी व्यवस्था से घुलमिल चुके तथाकथित वामपंथियों से जनता को उदारीकरण-निजीकरण के मौजूदा विश्वव्यापी दौर में जनता के हितों में आर्थिक सुधारों की कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। उनकी कहनी और करनी में ज़मीन आसमान का फर्क है। ये हमेशा जनता को धोखा देते आये हैं।

आज पूरे संसार में उदारीकरण-निजीकरण की आँधी झूल रही है और मज़दूरों-मेहनतकशों, नौजवानों, छात्रों के अधिकारों को बुरी तरह कुचला जा रहा है। पूरी दुनिया में ही मज़दूर विरोधी श्रम सुधार किए जा रहे हैं। हमारे देश में भी यही हालत है। ऐसे समय में फ्रांस के मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों का श्रम सुधारों के खिलाफ़ जबदस्त आन्दोलन भरपूर स्वागतयोग्य है। पेरिस कम्यून की धरती के जुझारू साथियों को इंकलाबी सलाम!

— लखविन्दर

देश को ख़ूनी दलदल या ग़ुलामों के कैदख़ाने में तब्दील होने से बचाने लिए उठ खड़े हो!

(पेज 1 से आगे)

डालने के लिए पूँजीपतियों को खुली छूट दे दी। देशभक्ति और विश्वविजय के नारों का बुखार जब तक जनता के सिर से उतरा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी! उनके सारे अधिकार छीने जा चुके थे। अगर हम आज ही हिटलर के इन अनुयायियों की असलियत नहीं पहचानते और इनके ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाते तो कल बहुत देर हो जायेगी। हर ज़ुबान पर ताला लग जायेगा। इतिहास का आज तक का यही सबक रहा है कि फासीवाद विरोधी निर्णायक संघर्ष सड़कों पर होगा और मज़दूर वर्ग को क्रान्तिकारी ढंग से संगठित किये बिना, संसद में और चुनावों के ज़रिए फासीवाद को शिकस्त नहीं दी जा सकती। फासीवाद विरोधी संघर्ष को पूँजीवाद विरोधी संघर्ष से काटकर नहीं देखा जा सकता। पूँजीवाद के बिना फासीवाद की बात नहीं की जा सकती। फासीवाद विरोधी संघर्ष एक लम्बा संघर्ष है और उसी दृष्टि से इसकी तैयारी होनी चाहिए।

दूसरे, हमें यह समझने की ज़रूरत है कि फासीवाद कुछ व्यक्तियों या किसी पार्टी की सनक नहीं है। यह पूँजीवाद के लाइलाज रोग से पैदा होने वाला ऐसा कीड़ा है जिसे पूँजीवाद ख़ुद अपने संकट को टालने के लिए बढ़ावा देता है। यह पूँजीवादी व्यवस्था अन्दर से सड़ चुकी है, और इसी सड़ाँध से पूरी दुनिया के पूँजीवादी समाजों में हिटलर-मुसोलिनी के वे वारिस पैदा हो रहे हैं, जिन्हें फासिस्ट कहा जाता है। फासिस्ट पूँजीवादी लोकतंत्र को भी नहीं मानते और उसे पूरी तरह रस्मी बना देते हैं और वास्तव में पूँजी की नंगी, खुली तानाशाही कायम कर देते हैं। फासिस्ट धर्म या नस्ल के आधार पर आम जनता को बाँट देते हैं, वे नक़ली राष्ट्रभक्ति के उन्मादी जुनून में हक़ की लड़ाई की हर आवाज़ को दबा देते हैं। वे धार्मिक या नस्ली अल्पसंख्यकों को निशाना बनाकर एक नक़ली लड़ाई खड़ी करके असली लड़ाई को पीछे कर देते हैं और पूरे देश में दंगों और ख़ून-खराबों का विनाशकारी खेल शुरू कर देते हैं। पूँजीपति वर्ग अपने संकटों से निजात पाने के लिए फासीवाद को बढ़ावा देता है और ज़ंजीर से बँधे शिकारी कुत्ते की तरह जनता को डराने के लिए उसका इस्तेमाल करना चाहता है, लेकिन जब-तब यह कुत्ता अपनी ज़ंजीर छुड़ा भी लेता है और तब समाज में भयंकर ख़ूनी उत्पात मचाता है।।

मोदी का सत्ता में आना पूरी दुनिया में चल रहे सिलसिले की ही एक कड़ी है। नवउदारवाद के इस दौर में पूँजीवादी व्यवस्था का संकट जैसे-जैसे गम्भीर होता जा रहा है, वैसे-वैसे दुनियाभर में फासीवादी उभार का एक नया दौर दिखायी दे रहा है। ग्रीस, स्पेन, इटली, फ्रांस और उक्रेन जैसे यूरोप के कई देशों में फासिस्ट किस्म की धुर दक्षिणपंथी पार्टियों की ताक़त बढ़ रही है। अमेरिका में भी डोनाल्ड ट्रम्प और टी पार्टी जैसी धुर दक्षिणपंथी शक्तियों का प्रभाव बढ़ रहा है। नव-नाज़ी ग्रुपों का उत्पात तो इंग्लैण्ड, जर्मनी, नार्वे जैसे देशों में भी तेज़ हो रहा है। तुर्की, इंडोनेशिया जैसे देशों में पहले से निरंकुश सत्ताएँ क़ायम हैं जो पूँजीपतियों के हित में जनता का कठोरता से दमन कर रही हैं। हाल के वर्षों में कई जगह ऐसी ताकतें सीधे या फिर दूसरी बुर्जुआ पार्टियों के साथ गठबन्धन में शामिल होकर सत्ता में आ चुकी हैं। जहाँ वे सत्ता में नहीं हैं, वहाँ भी बुर्जुआ जनवाद और फासीवाद के बीच की विभाजक रेखा धूमिल-सी पड़ती जा रही है और सड़कों पर फासीवादी उत्पात बढ़ता जा रहा है।

संघ परिवार को दशकों की तैयारी के बाद इस बार जो मौक़ा मिला है उसका पूरा फ़ायदा उठाकर वह लम्बे समय तक सत्ता में बने रहने की योजना पर काम कर रहा है। भाजपा गठबंधन के शासन का सबसे अधिक कहर मज़दूर वर्ग पर बरपा हुआ है, ये अलग बात है कि मीडिया में उसकी कहीं चर्चा नहीं होती। मुनाफ़ाख़ोरों की तिजोरियाँ भरने के लिए मज़दूरों की हड्डियों तक को निचोड़ने की खुली छूट दे दी गयी है। ट्रेड यूनियनों के लिए मज़दूरों-कर्मचारियों के आर्थिक मुद्दों की लड़ाई लड़ना भी मुश्किल हो गया है। क़ानूनों में बदलाव करके मज़दूरों के रहे-सहे क़ानूनी भी ख़त्म करने की तैयारी पूरी हो चुकी है। हर साल दो करोड़ रोज़गार देने के वायदे तो जुमले साबित हो ही चुके हैं, आँकड़े बता रहे हैं कि देश में रोज़गार घट रहे हैं। मज़दूर अपने अनुभव से भी इस बात को समझ रहे हैं। सरकारी नौकरियों में कटौती जारी है। ठेकाकरण-निजीकरण लगातार जारी है। सरकारी परिसम्पत्तियों को औने-पौने दामों पर पूँजीपतियों के हवाले किया जा रहा है और जनता को मिलने वाली सरकारी सुविधाओं में और अधिक कटौती की जा रही है।

संघी गिरोह की पूरी कोशिश है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों को एक 'आतंक राज' के मातहत दोयम दर्जे का नागरिक बनकर जीने पर मजबूर किया जाये। अल्पसंख्यकों को बुरी तरह दबाकर, आतंकित करके, कोने में धकेलकर उनकी स्थिति बिल्कुल दोयम दर्जे की बना दी जाये। इसी के तहत देशभर में अल्पसंख्यकों पर हमले और उनके विरुद्ध ज़हर उगलने की खुली छूट संघी गुंडों को दी गयी है। अनेक सबूत होने के बावजूद एक-एक करके हिन्दुत्व के नाम पर आतंक फैलाने वालों को छोड़ा जा रहा है। दलितों का उत्पीड़न अपने चरम पर है। स्त्रियों के विरुद्ध संघी नफ़रत इनके नेताओं के मुँह से फूटी पड़ रही है। मोदी की आर्थिक नीतियों का बुलडोज़र आगे बढ़ने के साथ-साथ अवाम में बढ़ते असन्तोष को भटकाने के लिए साम्प्रदायिक और जातिगत आधार पर मेहनतकश जनता को बाँटकर उसकी वर्गीय एकजुटता को ज़्यादा से ज़्यादा तोड़ने की कोशिशें अभी और तेज़ होती जायेंगी। देश के भीतर के असली दुश्मनों से ध्यान भटकाने के लिए उग्र अन्धराष्ट्रवादी नारे दिये जायेंगे और सीमाओं पर तनाव पैदा किया जायेगा। इसलिए मेहनतकशों, नौजवानों और सजग-निडर नागरिकों को चौकस रहना होगा। उन्हें ख़ुद साम्प्रदायिक उन्माद में बहने से बचना होगा और उन्माद पैदा करने की किसी भी कोशिश को नाकाम करने के लिए सक्रिय हस्तक्षेप करने का साहस जुटाना होगा। साथ ही इन असली देशद्रोहियों और जनद्रोहियों को नंगा करने के लिए जनता के बीच जाकर धुआँधार प्रचार अभियान चलाना होगा।

फासीवादी उभार के लिए उन संशोधनवादियों, संसदमार्गी नकली कम्युनिस्टों और सामाजिक जनवादियों को इतिहास कभी नहीं माफ कर सकता, जिन्होंने पिछले कई दशकों के दौरान मात्रा आर्थिक संघर्षों और संसदीय विभ्रमों में उलझाकर मज़दूर वर्ग की वर्गचेतना को कुण्ठित करने का काम किया। ये संशोधनवादी फासीवाद-विरोधी संघर्ष को मात्रा चुनावी हार-जीत के रूप में ही प्रस्तुत करते रहे, या फिर सड़कों पर मात्रा कुछ प्रतीकात्मक विरोध-प्रदर्शनों तक सीमित रहे। आज भी ये फिर वही कर रहे हैं और मोदी सरकार से जनता के बढ़ते मोहभंग का चुनाव में फ़ायदा उठाने की उम्मीद में जी रहे हैं। दरअसल ये संशोधनवादी आज फासीवाद का जुझारू और कारगर विरोध कर ही नहीं सकते, क्योंकि ये "मानवीय चेहरे" वाले नवउदारवाद का और कीन्सियाई नुस्खों वाले "कल्याणकारी राज्य" का विकल्प ही सुझाते हैं। आज पूँजीवादी ढाँचे में चूँकि इस विकल्प की सम्भावनाएँ बहुत कम हो गयी हैं, इसलिए पूँजीवाद के लिए भी ये संशोधनवादी काफी हद तक अप्रासंगिक हो गये हैं। बस इनकी एक ही भूमिका रह गयी है कि ये मज़दूर वर्ग को अर्थवाद और संसदवाद के दायरे में कैद रखकर उसकी वर्गचेतना को कुण्ठित करते रहें और वह काम ये करते रहेंगे। ये बस संसद में गत्ते की तलवारें भाँजते रहे और टीवी और अख़बारों में बयानबाज़ियाँ करते रहे। ना इनके कलेजे में इतना दम है और ना ही इनकी ये औक़ात रह गयी है कि ये फासीवादी गिरोहों और लम्पटों के हुजूमों से आमने-सामने की लड़ाई लड़ने के लिए लोगों को सड़कों पर उतार सकें।

फासीवादी हमला लगातार जारी है, लेकिन इसका दूसरा पहलू यह है कि मज़दूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता और देश के छात्र-नौजवान सबकुछ झेलते रहने के लिए तैयार नहीं हैं। वे लड़ने के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं। इन संघर्षों को दिशा देने, उन्हें और व्यापक बनाने और जनता के तमाम हिस्सों की लड़ाइयों को आपस में जोड़ने की ज़रूरत है। आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ़ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर ग़रीबों और मज़दूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मज़दूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चौकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमख़म रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मज़दूर वर्ग की फौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। हमें अपनी भरपूर ताक़त के साथ इसकी तैयारी में जुट जाना चाहिए।

देश के प्राकृतिक संसाधनों को लूट रहे मोदी सरकार के चहेते

(पेज 16 से आगे)

भाषण दे डाला। उन्होंने कहा कि, "मैंने और मेरे पति ने जीवन का 22 साल से ज़्यादा वक्त समाज की सेवा में अर्पित कर दिया। मेरा मानना है कि ईमानदारी और नैतिकता के साथ कारोबार करना सबका हक़ है।"

उनकी "नैतिकता" और "ईमानदारी" यही है कि लोगों को उनकी जगह-जमीन से उजाड़कर, कौड़ियों के भाव प्राकृतिक संसाधन लूटकर उस पर कारोबार खड़ा किया जाये और मनमाफ़िक मुनाफ़ा लूटा जाए। वैसे इन नेताओं और पूँजीपतियों से इससे ज़्यादा उम्मीद भी क्या की जा सकती है कि वह जनता को खुलकर लूटें और उस लूट को जायज़ ठहराने के लिए नैतिकता और ईमानदारी का पाठ पढ़ायें।

जिस देश में रोज़ हज़ारों बच्चे भूख से मरते हों, करोड़ों बेघर हों, बेरोज़गार हों, बुनियादी जरूरत की सारी चीज़ें महँगी हो गयी हों, शिक्षा, स्वास्थ्य की सब्सिडी में लगातार कटौती की जा रही हो और दूसरी तरफ पूँजीपतियों के करोड़ों रुपये के क़र्ज़ माफ़ किये जा रहे हों, उस देश में जब जनता शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार का सवाल उठाती है तो कहा जता है कि देश आर्थिक संकट से गुज़र रहा है। गरीबों को ही कुर्बानी करने और अपने खाली पेट को थोड़ा और कसकर बाँध लेने के लिए तैयार रहना होगा। संकट के कारण कभी ऐसा नहीं होता कि अपनी अय्याशियों पर करोड़ों रुपये फूँकने वाले अमीरों पर लगाम कसी जाये, उनकी फ़िज़ूलखर्चियों पर रोक लगायी जाये, उनकी लाखों-करोड़ों की तनख्वाहों में कटौती की जाए या उनकी बेतहाशा आमदनी पर टैक्स बढ़ाकर संकट का बोझ हल्का किया जाये।

बल्कि होता यह है कि अंबानी-अडानी ग्रुप को हज़ारों एकड़ जमीन एक रुपये की दर पर और तमाम पूँजीपतियों और उनके सेवकों को कौड़ियों के भाव ज़मीनें और प्राकृतिक संसाधन लुटाने वाली सरकार कहती है कि ग़रीबों को मिलने वाली सब्सिडी से अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है, उन्हें ख़त्म करना ज़रूरी है। इसीलिए लगातार शिक्षा, स्वास्थ्य के मदों में कटौती कर रही है और मेहनतकशों की हड्डियाँ ज़्यादा निचोड़कर पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भर रही है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि अप्रत्यक्ष करों के रूप में सरकार हर साल मेहनतकश जनता से खरबों रुपये वसूलती है। इस पैसे से रोज़गार के नये अवसर और झुग्गीवालों को मकान देने के बजाय यह अंबानी-अडानी को सब्सिडी देने में खर्च कर देती है।

अब सोचना हमें है कि क्या हम सरकार और व्यवस्था की खुलेआम नंगई और भ्रष्टाचार को यूँ ही हाथ पर हाथ धरे बैठे देखते रहेंगे या इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए अपनी गति को तेज करेंगे।

— नमिता

घरेलू कामगारों का जुझारू प्रदर्शन

(पेज 3 से आगे)

लड़ाई लड़नी होगी।

प्रदर्शन के बाद दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन के प्रतिनिधिमण्डल से दिल्ली सरकार के श्रम मन्त्री गोपाल राय के ओएसडी आराके। गौर ने मुलाक़ात की और ज्ञापन लेने के साथ ही करीब 45 मिनट की वार्ता के दौरान बताया कि दिल्ली सरकार घरेलू कामगारों के लिए क़ानून बनाने पर काम कर रही है जिसमें 8 से 12 महीने लगेंगे। घरेलू कामगारों के अनिवार्य पंजीकरण की माँग पर उन्होंने कहा कि दिल्ली सरकार प्लेसमेंट एजेंसियों के माध्यम से यह काम करने पर विचार कर रही है। प्रतिनिधिमण्डल ने इस पर कहा कि प्लेसमेण्ट एजेंसियों की निगरानी और रेग्यूलेशन की व्यवस्था की जाये और प्लेसमेण्ट के सभी ब्योरे श्रम कार्यालयों में या घरेलू कामगारों के लिए बने बोर्ड के सामने जमा करना उनके लिए अनिवार्य बनाया जाये। श्रम मन्त्री के ओएसडी ने इस माँग पर भी विचार करने की बात कही कि क़ानून बनने तक घरेलू कामगारों के कुछ बुनियादी अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सरकार अधिसूचना जारी करे। आज दिये गये ज्ञापन पर चर्चा के लिए दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन के प्रतिनिधिमण्डल को अगले सप्ताह श्रम मन्त्री की ओर से मिलने के लिए बुलाया गया है।

यूनियन ने यह संकल्प प्रकट किया कि इन माँगों के माने जाने तक दिल्ली के घरेलू कामगार चुप नहीं बैठेंगे। इन माँगों को लेकर पूरी दिल्ली में घरेलू कामगारों के बीच व्यापक अभियान चलाया जायेगा और अधिक बड़े पैमाने पर आन्दोलन खड़ा किया जायेगा।

— बिगुल संवाददाता

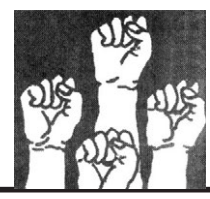

कश्मीर : आओ देखो गलियों में बहता लहू

याद रखो
एक बच्चे की हत्या
एक औरत की मौत
एक आदमी का
गोलियों से चिथड़ा तन
किसी शासन का ही नहीं
सम्पूर्ण राष्ट्र का है पतन।
ऐसा खून बहकर
धरती में जज्ब नहीं होता
आकाश में फहराते झंडों को
काला करता है।
जिस धरती पर
फौजी बूटों के निशान हों
और उन पर
लाशें गिर रही हों
वह धरती
यदि तुम्हारे खून में
आग बन कर नहीं दौड़ती
तो समझ लो
तुम बंजर हो गये हो।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'देश काग़ज़ पर बना कोई नक्शा नहीं होता' की ये पंक्तियाँ कश्मीर में पिछले कई दशकों से मौजूद नारकीय हालात और कश्मीरी जनता के प्रति खाये-पीये-अघाये मध्यवर्ग की बेरुखी को काफ़ी हद तक बयान कर देती हैं। यह वह वर्ग है जो "देशभक्ति" और "राष्ट्रवाद" के नाम पर बहाई जा रही आँधी में ज़ोर-शोर से मदमस्त हुआ जा रहा है। उसके लिए कश्मीर का मतलब भारत के नक्शे के 'ताज' से अधिक कुछ नहीं। कश्मीर की जनता किस प्रकार पिछले ढ़ाई दशकों से सशस्त्र बलों की मौजूदगी में रोज़-रोज़ तिल-तिलकर मर रही है, इससे इस वर्ग को कोई फर्क नहीं पड़ता। बहरहाल अपवादों को छोड़कर संपूर्णता में इस वर्ग से तो यूं भी जन-सरोकारों की उम्मीद करना बेवकूफ़ी होगी लेकिन हम मेहनतकशों को कश्मीर में मौजूद हालात, कश्मीरी जनता की आकांक्षाओं और भारतीय राज्य से उसके अलगाव के कारणों को तो जानना-समझना ही होगा और साथ ही इस समस्या के प्रति एक सही नज़रिया भी विकसित करना होगा।

हम हालिया घटनाक्रम से अपनी बात को आगे बढ़ाते हैं। बीती 16 अप्रैल को कश्मीर के कुपवाड़ा ज़िला के हंदवारा इलाके में एक सैन्यकर्मी ने 16 वर्षीय छात्रा के साथ छेड़छाड़ की। बाद में सैन्य बलों ने इस घटना का विरोध कर रहे स्थानीय लोगों पर फायरिंग की जिसमें पांच लोगों की जान चली गयी। यही नहीं पुलिस ने पीडित छात्रा और उसके पिता पर दबाव बनाने के लिए उन्हें हिरासत में लिया। पीडिता पर दबाव डाला गया कि वह सैन्यकर्मी के खिलाफ़ दिए अपने बयान को वापस ले ले।

कश्मीर में सैन्य दलों द्वारा स्थानीय लोगों पर ढाए जाने वाले ज़ुल्मो–सितम की न तो यह पहली घटना है न ही आखिरी। उनके वहशियाना हरकतों की फेहरिस्त काफ़ी लम्बी है। फरवरी 1991 में कुपवाड़ा ज़िले के ही कुनन-पोशपोरा गाँव में पहले गाँव के पुरुषों को हिरासत में लिया गया, यातनाएँ दी गयीं और बाद में राजपूताना राइफलस के सैन्यकर्मियों द्वारा गाँव की अनेक महिलाओं का उनके छोटे-छोटे बच्चों के सामने बलात्कार किया गया। (अनेक स्रोत इनकी संख्या 23 बताते हैं लेकिन प्रतिष्ठित अन्तरराष्ट्रीय संस्था 'ह्यूमन राइट्स वॉच' सहित कई मानवाधिकार संगठनों के अनुसार यह संख्या 100 तक हो सकती है।) वर्ष 2009 में सशस्त्र बल द्वारा शोपियां ज़िले में दो महिलाओं का बलात्कार करके उन्हें बेरहमी से मौत के घाट उतारा गया। बढ़ते जनदबाव के बाद कहीं जाकर राज्य पुलिस ने एफ़. आई.आर. दर्ज की। सी.बी.आई. को जांच के आदेश दिये गये और बेशर्मी का परिचय देते हुए उसने सैनिकों द्वारा महिलाओं के साथ किये गये बलात्कार और हत्या की बात को ही ख़ारिज कर दिया। यही नहीं जनवरी 1990 में

गावकदल में पैरामिलीट्री बलों द्वारा 52 प्रदर्शनकारियों की निर्मम हत्या, 2000 में छत्तीसिंहपुरा, पथरीबल, बराकपुर और 2010 की माछिल फर्जी मुठभेड़ों और वर्ष 2010 में ही तुफैल मट्टू की सेना की गोलाबारी में हुई मौत के बाद पूरी कश्मीर घाटी में उठे व्यापक जनउभार में सैन्य बल द्वारा अपनी गोलियों से 100 से अधिक युवाओं, किशोरों और बच्चों की जान लिये जाने की घटनाएँ आम तौर पर प्रश्नों से परे समझे जाने वाली सेना पर और साथ ही साथ जनवाद का ढ़ोंग करने वाले राज्य पर भी कई प्रश्न चिह्न खड़े करती है। अगर आँकड़ों की बात करें तो जनवरी 1989 से लेकर मार्च 31, 2016 तक करीब 94,332 कश्मीरियों की हत्या की गयी है जिसमें 7,043 हत्याएँ हिरासत में हुई हैं। एक लाख से अधिक कश्मीरी जेल की सलाखों के पीछे हैं। दस हज़ार से अधिक महिलाओं का सेना द्वारा बलात्कार किया गया है। कई रिपोर्टें और अदालतों में दाखिल दस्तावेज़ इसकी पुष्टि करते हैं।

ग़ौरतलब है कि भारतीय राज्य द्वारा सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम यानी आफ्सपा (AFSPA) कानून 1958 में बनाया गया। आफ्सपा और कुछ नहीं राज्यसत्ता द्वारा जनता के दमन और उत्पीड़न का एक ऐसा औज़ार है जो जनवाद की चादर ओढ़े इस पूँजीवादी निज़ाम की हकीकत को तार-तार कर देता है। आफ्सपा कानून को उत्तर-पूर्वी राज्यों और पंजाब के बाद 1990 में आतंकवाद का बहाना बनाकर कश्मीर में लागू किया गया जिसके तहत सेना को असीमित अधिकार दिए गये। इस कानून के तहत सेना महज़ शक के आधार पर किसी को भी गोली मार सकती है, किसी भी इमारत को तबाह कर सकती है। आज जब कश्मीर में आतंकवाद नगण्य होने की कगार पर है तब भी इस कानून और सशस्त्र सुरक्षा बल की लाखों की तादाद में मौजूदगी एक सवालिया निशान छोड़ देती है। सेना की गैर-ज़रूरी मौजूदगी को कश्मीरी जनता भारतीय राज्यसत्ता द्वारा उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा समझती है और इसलिए भारतीय राज्यसत्ता के हर प्रतीक से वह तहेदिल से नफ़रत करती है। भारतीय राज्यसत्ता द्वारा कश्मीर की जनता के दमन, उत्पीड़न और ऐतिहासिक विश्वासघात का एक लम्बा इतिहास है जिसे कश्मीरी वाम की आने वाली पीढ़ियाँ कभी नहीं भूलेंगी। कश्मीरी जनता जिस भी हद तक संभव है उस हद तक भारतीय राज्यसत्ता की बेशर्म कारगुज़ारियों का विरोध भी कर रही है और आगे भी करती रहेगी।

अगर हम इतिहास मे थोड़ा पीछे की ओर मुडें तो हमें भारतीय राज्यसत्ता के प्रति कश्मीरी जनता में मौजूद नफ़रत और अलगाव के कारणों को पता चलेगा। अंग्रेज़ों की गुलामी से आज़ाद होने के समय जम्मू और कश्मीर उन 562 रियासतों में से एक था जो अंग्रेजी राज्य के अधीन था। आज़ादी के बाद हैदराबाद, जूनागढ़ और जम्मू–कश्मीर को छोड़कर अन्य सभी रियासतों के राजे-रजवाड़ों ने या तो भारत या फिर पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला लिया। हैदराबाद का निज़ाम एक स्वतंत्र राष्ट्र के सपने देख रहा था और जूनागढ़ का नवाब पाकिस्तान में शामिल होना चाहता था। इन दोनों रियासतों के विलय के संदर्भ में भारतीय राज्यसत्ता ने दलील दी कि उनके विलय से संबंधित फैसले का अधिकार उन रियासतों के शासकों को नहीं बल्कि वहाँ की जनता को हासिल होगा। इसके मद्देनज़र जूनागढ़ में आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया और जनमत संग्रह कराया गया। अन्तत: दोनों ही रियासतें भारत में शामिल हुई।

अंग्रेज़ी गुलामी से आज़ादी के बाद भी कश्मीर में हरी सिंह अपने वंश के शासन को बरकरार रखने के लिए भारत और पाकिस्तान में विलय की अपेक्षा एक स्वतंत्र राष्ट्र बनाना चाहता था। कश्मीरी जनता में आज़ादी की लड़ाई के दौर से ही जिस नेता की सबसे अधिक साख़ थी वे थे शेख अब्दुल्लाह। शेख अब्दुल्लाह सांप्रदायिक आधार पर पाकिस्तान में शामिल होने के हिमायती नहीं थे। आज़ादी के तुरंत बाद पाकिस्तान द्वारा समर्थित कबायली हमले के बाद तो शेख अब्दुल्लाह पाकिस्तान में शामिल होने के विरोधी हो गये, हालाँकि वे भारतीय राज्य में शामिल होने को लेकर भी काफ़ी सशंकित थे। वर्ष 1947 से 1953 तक शेख अब्दुल्लाह कश्मीर के पाकिस्तान में विलय और जनमत संग्रह की अपेक्षा स्वायत्ता के पक्षधर थे। अपनी राष्ट्रीय असमिता के प्रति सचेत कश्मीरी जनता भी किसी शर्त को सामने रखे बगैर भारत में शामिल होने को लेकर दुविधा में थी। आखिरकार काफ़ी राजनीतिक मंथन के बाद कश्मीर इस शर्त पर भारत में शामिल हुआ कि विदेशी मामलों, मुद्रा चलन और सुरक्षा मसलों के अतिरिक्त भारतीय राज्य कश्मीर के मामलों में दख़ल नहीं देगा। इसी आधार पर संविधान में धारा 370 को शामिल किया गया। कश्मीर के भारत में शामिल होने पर कश्मीरी जनता से भविष्य में जनमत संग्रह कराने का वायदा किया गया था जो कभी पूरा नहीं किया गया।

नेहरू का तर्क था कि पाकिस्तान समर्थित हमले के बाद जब पाकिस्तान कश्मीर के उत्तर-पश्चिमी हिस्से से अपनी सेना वापस बुला लेगा तब जनमत संग्रह कराया जाएगा। पाकिस्तानी हुक्मरानों ने अपना कब्ज़ा छोड़ा नहीं और इस प्रकार भारतीय राज्यसत्ता ने जनमत संग्रह से इंकार कर दिया।

इधर दूसरी ओर जम्मू में श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ द्वारा समर्थित प्रजा परिषद आंदोलन के बाद कश्मीर समस्या का तेज़ी से सांप्रदायिकीकरण हुआ। इसका नतीजा था कि कश्मीरी जनता का भारत से अलगाव बढ़ने लगा और साथ ही साथ शेख अब्दुल्लाह अब भारतीय राज्य के भीतर कश्मीर की स्वायत्ता की बजाय कश्मीर की आज़ादी के बारे में विचारने लगे। इसके बाद नेहरू और शेख अब्दुल्लाह के बीच दूरियाँ बढ़ने लगी और अन्तत: 1953 में नेहरू ने शेख अब्दुल्लाह की चुनी हुई सरकार को बर्खास्त कर दिया। शेख अब्दुल्लाह की जगह भारतीय राज्य ने अपने पिट्ठू बख़्शी गुलाम मोहम्मद को जम्मू-कश्मीर का ज़िम्मा सौंप दिया। इसके बाद तो नेहरू कश्मीर में जनमत संग्रह के अपने वायदे से पूरी तरह मुकर गये। 1964 में शेख अब्दुल्लाह जब रिहा हुए तब तक कश्मीर के जनमत संग्रह और स्वायत्तता के मसले पर उनका रुख काफ़ी समझौता परस्त हो चुका था। 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद उन्होने भारत सरकार के सामने अपने घुटने पूरी तरह टेक दिए। 1975 में इंदिरा गाँधी-शेख अब्दुल्लाह के बीच हुए समझौते के तहत शेख अब्दुल्लाह ने धारा 370 की प्रभावहीनता को भी मंज़ूरी दे दी।

इस ऐतिहासिक विश्वासघात ने कश्मीर की जनता में अलगाव को और अधिक बढ़ाया। बहरहाल इस पूरे दौर में कश्मीर में जनमत संग्रह और स्वायत्तता की माँग को लेकर अलग-अलग संगठन कश्मीरी जनता के बीच सक्रिय रहे। यही वह दौर भी था जब पाकिस्तान ने कश्मीर में आतंकवाद को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया। 1989 से लेकर 1991-92 के बीच कई हज़ार कश्मीरियों ने आतंकवाद और भारतीय राज्यसत्ता के आपसी टकरावों की कीमत चुकायी। भारतीय राज्यसत्ता के विश्वासघात और सेना द्वारा कश्मीरी जनता पर ढाये जाने वाले दमन और बर्बरता ने वह ज़मीन काफ़ी पहले तैयार की थी जिसकी एक प्रतिक्रिया के तौर पर कश्मीरी नौजवान बड़ी तादाद में आतंकवाद और धार्मिक कट्टरपंथ के रास्ते पर आगे बढ़ने लगे। 1989 से भारतीय राज्य ने आतंकवाद के खिलाफ़ बड़े पैमाने पर सैन्य अभियान चलाया और इसी दौर में कुख्यात कानून आफ्सपा भी लागू किया गया। इस दौरान आतंकवाद का मुकाबला करने के नाम पर सेना ने कश्मीरी जनता का बर्बर दमन और उत्पीड़न किया जो कि आज तक बदस्तूर जारी है। आतंकवाद के काफ़ी हद तक कुचल दिए जाने के बावजूद सैन्य उपस्थिति को भारतीय राज्यसत्ता एक हज़ार एक बहानों से जायज़ ठहराकर जनमानस को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित कर रही है।

पिछले लगभग छ: दशकों से भी अधिक समय के दौरान भारतीय राज्यसत्ता द्वारा कश्मीरी जनता के दमन, उत्पीड़न और वायदाखिलाफ़ी से उसकी आज़ादी की आकांक्षाएँ और प्रबल हुई है और साथ ही भारतीय राज्यसत्ता से उसका अलगाव भी बढ़ता रहा है। बहरहाल सैन्य दमन के बावजूद कश्मीरी जनता की स्वायत्तता और आत्मनिर्णय की माँग कभी भी दबाई नहीं जा सकती। मगर यह बात भी उतनी ही सच है कि पूँजीवाद के भीतर यह माँग कभी पूरी भी नहीं होगी। भारतीय शासक वर्ग अलग-अलग रणनीतियाँ अपनाते हुए कश्मीर पर अपने अधिकार को बनाये रखेगा। भारत और पाकिस्तान दोनों के शासक वर्ग अपने हितों को साधने के नज़रिये से कश्मीर को राष्ट्रीय शान का प्रश्न बनाए रखेंगे।

कश्मीर के आवाम की महत्वकांक्षा की पूर्ति तो एक समाजवादी समाज में ही संभव है जहाँ कश्मीर सहित अन्य दमित राष्ट्रीयताओं को आत्मनिर्णय का पूरा अधिकार हासिल होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि कश्मीर और अन्य राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार का संघर्ष समाजवाद के लिए सर्वहारा क्रांति के संघर्ष के साथ जुड़ा है।

— श्वेता कौल

संघर्षों की अलख जगाओ! मई दिवस की विरासत को आगे बढ़ाओ!

दिल्ली के वज़ीरपुर में मई दिवस के शहीदों की शान में सांस्कृतिक कार्यक्रम

बिगुल मज़दूर दस्ता एवं दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन द्वारा दिल्ली के वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में 131वे मई दिवस के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। मई दिवस के दिन सुबह वज़ीरपुर स्थित श्रीराम चौक पर एक जनसभा का आयोजन किया गया जिसमे मज़दूरों के लिए मई दिवस के महत्व, मई दिवस के अमर शहीदों की क़ुरबानी और मज़दूरों के संघर्ष के गौरवशाली इतिहास के बारे में बताया गया। मई दिवस के इतिहास और आज के मज़दूर आंदोलन के समक्ष खड़े ज़ रूरी मुद्दों से जुड़े पर्चों का वितरण भी किया गया। शाम को मई दिवस के शहीदों की शान में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें मज़दूरों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। कार्यक्रम में क्रांतिकारी गीतों की प्रस्तुति और मज़दूर वर्ग के सामने फ़ासीवाद की पोल खोलते नाटक "यह दिल मांगे मोर गुरूजी!" का मंचन भी किया गया। बिगुल मज़दूर दस्ता के सनी ने कहा कि मई दिवस केवल शिकागों के मज़दूरों की कुर्बानी की याददिहानी करने का एक दिन नहीं है बल्कि यह वह ऊर्जा स्रोत है जिससे आज के समय में हम अपने संघर्षों के लिए शक्ति सोंख सकते है। शिकागों के मज़दूर सिर्फ अपने आर्थिक हक़ों या राजनितिक हक़ों की लड़ाई नहीं लड़ रहे थे बल्कि वह समूचे मज़दूर वर्ग के लिए इंसानों के लायक ज़िन्दगी जीने के अधिकार के लिए लड़ रहे थे। उन्होंने शोषण के पूरे तंत्र के खिलाफ़ संघर्ष का बिगुल फूंखा था। उनकी कुर्बानी की वजह से ही दुनियाभर के शासकों को 8 घण्टे के काम की माँग को स्वीकार करना पड़ा था। लेकिन आज इन अधिकारों को भी हमसे छीना जा रहा है। इसीलिए आज बेहद ज़रूरी है कि हम न केवल अपने पुरखों की क़ुरबानी को याद करें बल्कि उनसे प्रेरणा लेकर संगठित हों और मज़दूरों के शोषण के पूरे ढाँचे को बदलने के लिए संघर्ष करें। बिगुल मज़दूर दस्ता की शिवानी ने आज मज़दूर वर्ग के सामने अपनी मुक्ति के संघर्ष के रास्ते में फ़ासीवाद की चुनौती का सामना करने के लिए एकजुट होने की बात पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि फ़ासीवाद ने हर हमेशा रंग, नस्ल, धर्म के आधार पर जनता को बाँट कर मज़दूर वर्ग का निर्ममता से शोषण किया। लेकिन इतिहास हमें यह भी बताता है कि जब-जब मज़दूरों ने अपनी एकता कायम की है तो फ़ासीवाद को मुँहकी खानी पड़ी है। कार्यक्रम के अंत में ' लड़ाई जारी है' फिल्म दिखायी गयी।

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर लुधियाना में मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन

पूँजीवादी लूट के खिलाफ संघर्ष जारी रखने का संकल्प

लुधियाना के ताजपुर रोड स्थित मज़दूर पुस्तकालय पर टेक्सटाईल हौज़री कामगार यूनियन व कारखाना मज़दूर यूनियन ने संयुक्त रूप से मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन किया। मई दिवस के शहीदों की कुर्बानी व विश्व मज़दूर वर्ग के जुझारू क्रान्तिकारी संघर्ष का प्रतीक लाल झण्डा फहरा कर, 'मई दिवस के शहीदों को लाल सलाम', 'दुनिया के मज़दूरो एक हो' आदि क्रान्तिकारी गगनभेदी नारे बुलन्द करते हुए मज़दूर शहीदों को याद किया और मज़दूर मुक्ति के उनके संघर्ष को ज़ोरदार ढंग से आगे बढ़ाने का प्रण किया। सांस्कृतिक मंच 'दस्तक' के साथियों ने क्रान्तिकारी गीतों-नाटकों का कार्यक्रम पेश किया। इस अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता के सुखविन्दर, कारखाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, नौजवान भारत सभा की बलजीत ने लोगों को सम्बोधित किया। राजविन्दर ने मंच संचालन किया। इस अवसर पर जनचेतना द्वारा क्रान्तिकारी-प्रगतिशील साहित्य की प्रदर्शनी लगायी गयी। अन्त में जी.टी रोड तक पैदल मार्च किया गया। सम्मेलन में लगभग 750 मज़दूर शामिल हुए।

वक्ताओं ने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस दुनिया के मज़दूरों को लूट, शोषण, अन्याय के खिलाफ एकजुट होकर क्रान्तिकारी संघर्ष लड़ने का आह्वान करता है। मज़दूर दिवस बताता है कि मज़दूर वर्ग की मुक्ति खुद मज़दूर वर्ग द्वारा ही होगी। विश्व में कहीं भी मज़दूरों के काम के घण्टों सम्बन्धी कोई कानून नहीं था उस समय अमेरिका के मज़दूरों ने 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम, आठ घण्टे मनोरंजन' के नारे तले सख्त संघर्ष किया। मज़दूर संघर्ष के दमन के बावजूद मज़दूरों की आवाज दबाई नहीं जा सकी। अमेरिका और विश्व के अन्य हिस्सों में आठ घण्टे काम दिहाड़ी का कानून बनाने की माँग पर मज़दूरों का संघर्ष आगे बढ़ा और बड़ी जीतें हासिल कीं। मई दिवस की महान क्रान्तिकारी विरासत मौजूदा अँधेरे समय में मज़दूरों को एकजुट होकर जुझारू संघर्ष लड़ने के लिए प्रेरित कर रही है और रास्ता दिखा रही है।

मज़दूर दिवस सम्मेलन की तैयारी के लिए कारखाना मज़दूर यूनियन व टेक्सटाईल हौज़री कामगार यूनियन के साथियों की टीमों ने पिछले बीस दिन से लुधियाना शहर के विभिन्न हिस्सों में प्रचार-प्रसार किया था। हजारों पर्चे बाँटे गये व दीवारों पर पोस्टर चिपकाये गये। जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ की गयीं, कारखाना गेटों पर, रिहायशी इलाकों में घर-घर जाकर, मज़दूर दिवस के शहीदों का क्रान्तिकारी पैगाम पहुँचाया गया। कुछ जगहों पर दस्तावेजी फिल्म 'मई दिवस की अमर कहानी' भी दिखायी गयी।

मुम्बई में मई दिवस पर जाति-धर्म पर ना बँटकर मज़दूर वर्ग की क्रांतिकारी एकजुटता बनाने का आह्वान

बिगुल मज़दूर दस्ता, मुम्बई ने मई दिवस पर मानखुर्द इलाके में कई सभाएं कीं व हजारों की संख्या में दो पर्चों का वितरण किया। एक पर्चे में मई दिवस का इतिहास और आज इसकी प्रासंगिकता बतायी गयी थी तो दूसरे पर्चे में मज़दूरों को जाति-धर्म के नाम पर आपस में बाँटने की संघ परिवार की साज़िश के प्रति आगाह किया गया था।

नितेश ने मई दिवस की विरासत से मज़दूरों को परिचित करवाया। नन्दन ने कहा कि आजकल मई दिवस पर चुनावबाज़ पार्टियाँ और मालिक ऐसे मज़दूरों को "श्रेष्ठ मज़दूर अवार्ड" देते हैं जो मालिक का मुनाफा बढ़ाने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा मेहनत करते हैं पर यही लोग अपने अधिकार माँगने वाले मज़दूरों का बर्बर दमन करते हैं। आज 93 फीसदी मज़दूर असंगठित हैं और उसके लिए श्रम कानूनों का कोई मतलब नहीं रह गया है। मई दिवस के शहीद स्पाइस और पार्सन्स का संगठन 1886 के समय में मज़दूरों को संगठित करने के लिए तीन भाषाओं में पाँच अख़बार निकालता था। आज हमें भी ऐसे क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बारों को हर मज़दूर तक ले जाना होगा क्योंकि अमीरों की पूँजी से चलने वाले अख़बार मज़दूर वर्ग की बात नहीं करने वाले।

सत्यनारायण ने कहा कि महाराष्ट्र में पहली मई महाराष्ट्र दिवस व मज़दूर दिवस दोनों के रूप में मनाया जाता है क्योंकि महाराष्ट्र को अलग राज्य बनाने के लिए यहां के मेहनतकश वर्ग ने ही बलिदान दिया था पर आज पूरे देश की तरह ही महाराष्ट्र के मज़दूरों, किसानों के हालात बदतर हो रहे हैं। 2015 में महाराष्ट्र में 3228 किसानों ने आत्महत्या की। महाराष्ट्र में इस समय 2 करोड़ से भी ज़्यादा लोग कुपोषण का शिकार हैं और उनकी दैनिक आय 12 रुपये से भी कम है। ऐसे में आज के दिन मई दिवस के शहीदों को याद कर हमें एक बेहतर भविष्य के लिए एकजुट होना होगा।

उद्योगपतियों की सेवा में नित नये कीर्तिमान स्थापित करने में व्यस्त मोदी के संघी साथी जनता को गुमराह करने में लगे हैं ताकि इनका असली चेहरा छुपा रहे। मई दिवस के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि हम मज़दूर फासीवाद को हराने के लिए एकजुट हो जायें।

मई दिवस का नारा है! सारा संसार हमारा है!

मज़दूरों का भी अपना उत्सव होना चाहिए। वह उत्सव है पहली मई का दिन और इस पर उन्हें ऐलान करना चाहिए

"सभी को काम, सभी को आज़ादी, सभी को बराबरी!"

साथियो,

बहुत समय पहले पिछली सदी में, सभी देशों के मज़दूरों ने फैसला लिया था कि वे हर साल यह दिन, पहली मई मनाया करेंगे। यह फैसला 1889 में लिया गया था जब कई देशों के समाजवादियों की पेरिस कांग्रेस में मज़दूरों ने संकल्प के साथ ऐलान किया था कि ठीक इसी दिन, मई की पहली तारीख को, जब प्रकृति सर्दियों की नींद से जाग उठती है, जब वनों और पहाड़ों पर हरियाली का समारोह दिखाई देने लगता है और जब खेत-खलिहान और घास के मैदान फूलों की शोभा से भर उठते हैं, सूरज की गर्म धूप खिल उठती है, हवा में नवजीवन का नया आनन्द भर जाता है और प्रकृति नृत्य और आनन्द में झूम उठती है—ठीक उसी दिन उन्होंने संकल्प के साथ बुलन्द आवाज में ऐलान किया था कि मज़दूर वर्ग मानवजाति के जीवन में बसन्त की बहार लाने जा रहा है, लाने जा रहा है पूँजीवाद के शिकंजे से मुक्ति का आस्वादन। आजादी और समाजवाद के आधार पर दुनिया का कायाकल्प करना ही मज़दूर वर्ग का ध्येय है।

हर वर्ग के अपने उत्सव होते हैं। कुलीन सामन्त ज़मींदार वर्ग ने अपने उत्सव चलाये और इन उत्सवों पर उन्होंने ऐलान किया कि किसानों को लूटना उनका "अधिकार" है। पूँजीपति वर्ग के अपने उत्सव होते हैं और इन पर वे मज़दूरों का शोषण करने के अपने "अधिकार" को जायज़ ठहराते हैं। पुरोहित-पादरियों के भी अपने उत्सव हैं और उन पर वे मौजूदा व्यवस्था का गुणगान करते हैं जिसके तहत मेहनतकश लोग ग़रीबी में पिसते हैं और निठल्ले लोग ऐशो-आराम में रहकर गुलछर्रे उड़ाते हैं। मज़दूरों के भी अपने उत्सव होने चाहिए जिस दिन वे ऐलान करें: सभी को काम, सभी के लिए आज़ादी, सभी लोगों के लिए सर्वजनीन बराबरी। यह उत्सव है मई दिवस का उत्सव।

बहुत समय पहले 1889 में ही मज़दूरों ने यह संकल्प लिया था।

तभी से मज़दूर वर्ग की समाजवाद की रणभेरी पहली मई के इस दिवस पर जलसे-जूलूसों में प्रबल से प्रबलतर स्वर में गूँज उठी है। मज़दूर आन्दोलन का महासागर लगातार उद्वेलित होता जा रहा है, फैलता जा रहा है नये-नये देशों में, विभिन्न राज्यों में, यूरोप-अमेरिका से लेकर एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया तक। केवल कुछ दशकों के दौरान ही पहले का कमज़ोर अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ एक मज़बूत अन्तरराष्ट्रीय भाईचारे में तबदील हो गया है। नियमित रूप से उसकी कांग्रेस आयोजित हो रही है और दुनिया के कोने-कोने में करोड़ों मज़दूर आज उसमें एकजुट हैं। मज़दूर वर्ग के आक्रोश का सागर प्रमत्त लहरें उठाते हुए उफन रहा है और पूँजीवाद के लड़खड़ाते गढ़ के विरुद्ध प्रलयंकारी वेग से आगे बढ़ता जा रहा है। ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, अमेरिका आदि देशों में कोयला खान मज़दूरी की हाल ही में जो विशाल हड़ताल हुई, वह एक ऐसी हड़ताल हुई है जिससे सारी दुनिया के शोषक के दिलों में कँपकँपी मच गयी है, यह इस बात का एक साफ संकेत है कि समाजवादी क्रान्ति अब दूर नहीं है।

"पूज्य धन के हम पुजारी नहीं हैं।" हम बुर्जुआ वर्ग और अत्याचारियों का राज नहीं चाहते। पूँजीवाद का नाश हो। नाश हो पूँजीवाद की पैदा की हुई ग़रीबी और रक्तपात की विभीषिकाओं का। मज़दूरों का राज ज़िन्दाबाद।, समाजवाद ज़िन्दाबाद।

इस दिवस पर सभी देशों के वर्ग सचेत मज़दूर यही ऐलान कर रहे हैं।

(इस पर्चे को 'पहली मई ज़िन्दाबाद' शीर्षक से मार्च 1912 में रूसी मज़दूरों द्वारा मई दिवस मनाने के लिए जोसेफ़ स्तालिन द्वारा तैयार और प्रकाशित किया गया था।)

गोरखपुर में मई दिवस पर शोषण के ख़िलाफ़ फिर एकजुट होने का संकल्प

बिगुल मज़दूर दस्ता, लक्ष्मी साइकिल इंजीनियरिंग वर्कर्स यूनियन टेक्स्टाइल वर्कर्स यूनियन ने 131वें अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर गोरखपुर के बरगदवां औद्योगिक क्षेत्र में जनसभा, जुलूस और सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया।

बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने कहा कि आज दलाल ट्रेड यूनियनों, चुनावी नौटंकीबाजों द्वारा मई दिवस के कार्यक्रमों को रस्मी बना दिया गया है। इनके प्रभाव में आकर मज़दूर वर्ग भी मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को भूलता जा रहा है। इनके द्वारा पूरे मज़दूर वर्ग के मुक्ति की लड़ाई को केवल कारखाने के भीतर की स्थितियों में कुछ सुधार लाने जैसे दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाइयों तक समेट दिया जाता है। मई दिवस की क्रांतिकारी विरासत हमें मज़दूर वर्ग के महान शिक्षकों की इस शिक्षा की याद दिलाती है कि मज़दूर वर्ग का ऐतिहासिक मिशन पूँजीवाद को क्रान्ति के रास्ते ध्वस्त कर सत्ता अपने हाथ में लेना है, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग की पूर्ण मुक्ति कभी सम्भव नहीं है। आज मज़दूर आन्दोलन ठहराव की स्थिति से गुजर रहा है। ऐसे में ज़रूरी है कि पूँजीवादी प्रचारतंत्र द्वारा फैलाये झूठ का जवाब दिया जाये और पूँजीवाद की नयी रणनीतियों पर नियमित चर्चाएँ आयोजित की जायें तथा मज़दूर वर्ग की एक नयी क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने की तैयारी की जाये।

बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने कहा कि आज देशभक्ति और देशद्रोह का शोर मचा हुआ है। आर.एस.एस. और भाजपा जिन्होंने आज़ादी की पूरी लड़ाई के दौरान अंग्रेजों के ख़िलाफ़ एक धेला तक नहीं उठाया वही आज देशभक्ति का सर्टिफिकेट बाँटते घूम रहे हैं। मज़दूर वर्ग जानता है कि देश की आम जनता को, उनके आपसी भाईचारे को, देश के प्राकृतिक संसाधनों को आज ख़तरा किनसे है?

कार्यक्रम के दूसरे दिन गीताप्रेस के मज़दूरों के बीच पर्चा वितरण किया गया। गौरतलब है कि पिछले दिनों गीताप्रेस के मज़दूरों ने शोषण के ख़िलाफ़ मैनेजमेंट के विरुद्ध आन्दोलन किया था। लेकिन कुछ दलाल ट्रेड यूनियनों और चुनावी पार्टियों के नेताओं के पीछे चलकर वह आन्दोलन अपने मुक़ाम तक नहीं पहुँच सका और आज आन्दोलन के नेताओं के घुटनाटेकू रवैये के चलते ठहराव का शिकार है। तीसरे दिन गोरखपुर के एक अन्य औद्योगिक क्षेत्र गीडा (गोरखपुर इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट अथॉरिटी) के मज़दूरों के बीच नुक्कड़ सभाओं एवं पर्चा वितरण का आयोजन किया गया।

दिल्ली के बादली-बवाना इलाक़े में मई दिवस पर दो दिन का मज़दूर जागरण अभियान

मई दिवस के अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता, स्त्री मज़दूर संगठन और नौजवान भारत सभा की उत्तर-पश्चिमी दिल्ली इकाई द्वारा भोरगढ़, होलम्बी के मेट्रो विहार फेस-2, बवाना जेजे कालोनी, रोहिणी के सेक्टर 27 की बस्ती व बादली औद्योगिक क्षेत्रा के राजा विहार में दो दिन साइकिल मार्च निकाला गया और नुक्कड़ सभाएँ करते हुए व्यापक पर्चा वितरण किया गया।

नुक्कड़ सभाओं में बिगुल मज़दूर दस्ता के अपूर्व ने कहा कि आज से 130 साल पहले शिकागो के मज़दूरों ने 8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम और 8 घण्टे मनोरंजन का नारा दिया और इस अधिकार को हासिल करने की क़ीमत तमाम मज़दूरों को अपने ख़ून से चुकानी पड़ी, लेकिन आज फिर इस देश के मेहनतकश उन्हीं गुलामी के हालात में जीने के लिए मजबूर हैं। अगर हम ये उम्मीद करते हैं कि शासक वर्ग मज़दूरों को अपनी इच्छा से तमाम अधिकार दे देंगे तो यह हमारी सबसे बड़ी भूल है। मज़दूरों ने जो भी सहूलियतें और अधिकार हासिल किये हैं, उनके लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ा है।

स्त्री मज़दूर संगठन की विमला सक्करवाल ने कहा कि आज मज़दूरों की वर्ग एकजुटता को तोड़ने के लिए तमाम फासिस्ट संगठन मज़दूर बस्तियों में काम कर रहे हैं और उनके बीच धर्म-जाति, क्षेत्रवाद के संकीर्ण मुद्दों को भड़का रहे हैं, मज़दूरों के इन सबसे बड़े दुश्मनों की असलियत को पहचानना होगा। मज़दूर वर्ग को इन इन्सानियत के दुश्मनों से लोहे के हाथों से निपटना होगा, तभी जाकर इस देश को फासिस्ट बर्बरता से बचाया जा सकता है।

नौजवान भारत सभा के शिवम ने कहा कि आज पूरे देश को पूँजीपतियों का कारख़ाना बनाने की कोशिश की जा रही है और मज़दूरों के तमाम हक़ों को क़ानूनी तौर पर ख़त्म किया जा रहा है। मज़दूरों की वर्ग एकजुटता को तोड़ने के लिए फासिस्ट संगठन लगातार साम्प्रदायिक जुनून पैदा कर रहे हैं। फासिस्टों को रोकने के लिए संसदीय सुअरबाड़े में लोट लगाने वाली तमाम पार्टियाँ और संशोधनवादी केवल गत्ते की तलवारे भाँज रहे हैं। इन फासिस्ट बर्बरों को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए आमने-सामने की लड़ाई की तैयारी करनी होगी।

हरियाणा में मई दिवस के कार्यक्रम

बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा ने 130वें मई दिवस के अवसर पर हरियाणा के कलायत शहर में नुक्कड़ सभाएँ और पर्चा वितरण करते हुए रैली निकाली। बिगुल मज़दूर दस्ता के बण्टी ने कहा कि मई दिवस मज़दूरों की मुक्ति, संघर्ष और कुर्बानी का त्यौहार है। आज फिर देश-दुनिया में मुनाफाखोर पूँजीपति वर्ग काबिज है। मज़दूरों की लाखों कुर्बानियों की बदौलत मिले अधिकारों को लगातार छीना जा रहा है। रैली के समापन पर बिगुल मज़दूर और नौजवान भारत सभा के सदस्यों ने शपथ ली कि वे मई दिवस की गौरवशाली विरासत को हर मज़दूर तक पहुँचाने का प्रयास करेंगे।

शाम को कैथल के बलराज नगर में सभा व फिल्म शो का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत मज़दूरों के गीत 'इन्सां पैरों पर खड़े हुए' से हुई। बिगुल के अजय ने बताया कि आज हमें मेहनतकश आबादी को नये सिरे से एकजुट करना होगा। हमें कारखानों से लेकर मज़दूर बस्तियों, गाँव-देहात में इलाकाई यूनियनें बनानी होंगी जिसमें सभी अलग-अलग पेशों के लेकर स्त्री-पुरुष मज़दूरों की सच्ची एकता कायम की जा सके। मेहनतकशों के सामने नारकीय गुलामी, अपमान और बेबसी की जिन्दगी से निजात पाने का मात्र यही एक रास्ता है। पिछली हारों से ज़रूरी सबक लेकर पूँजीवादी व्यवस्था के खात्मे की लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी। इसलिए मेहनतकश साथियों आओ, फौलादी एकता बनायें, देश-दुनिया समाज के बारे में अपनी समझ बढ़ायें, दिमागी गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ दें और एक-एक अधिकार के लिए लड़ते हुए कदम-ब-कदम आगे बढ़ते जायें। अन्त में 'लड़ाई जारी है' फिल्म का प्रदर्शन किया गया।

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ

(तीसरी किस्त)

अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य एवं प्रसिद्ध राजनीतिक चित्रकार ह्यूगो गेलर्ट ने 1934 में मार्क्स की 'पूँजी' के आधार पर एक पुस्तक 'कार्ल मार्क्सेज़ कैपिटल इन लिथोग्राफ़्स' लिखी थी जिसमें 'पूँजी' में दी गयी प्रमुख अवधारणाओं को चित्रों के ज़रिये समझाया गया था। गेलर्ट के ही शब्दों में इस पुस्तक में ''...मूल पाठ के सबसे महत्वपूर्ण अंश ही दिये गये हैं। लेकिन मार्क्सवाद की बुनियादी समझ के लिए आवश्यक सामग्री चित्रांकनों की मदद से डाली गयी है।'' 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए इस शानदार कृति के चुनिन्दा अंशों को एक श्रृंखला के रूप में दिया जा रहा है। — सम्पादक

आदिम संचय: पूँजीवादी फार्मर की उत्पत्ति

...जहाँ तक प्रत्यक्ष प्रभावों का संबंध है, खेतिहर आबादी का सम्पत्तिहरण बड़े भूस्वामी ही पैदा कर सकता था। लेकिन चूँकि पूँजीवादी फार्मर की उत्पत्ति कई सदियों तक जारी रहने वाली वाली एक धीमी प्रक्रिया के तहत हुई, इसलिए हम उसके कारणों को समझ सकते हैं। स्वतंत्र छोटे मालिक किसानों की ही तरह भूदासों के पास भूमि विभिन्न काश्तकारियों में थी, और इसलिए उनको भूदासत्व से मुक्ति भी बहुविध रूपों में मिली।

पन्द्रहवीं सदी में, जब तक स्वतंत्र किसान और अपने समय का आंशिक हिस्से में खुद के लिए काम करने वाले खेतिहर मज़दूर खुद के श्रम से अपनी समृद्धि बढ़ाते रहे, तब तक फार्मर की परिस्थितियाँ औसत दर्जे की ही रहीं और उसके उत्पादन का क्षेत्र भी सीमित रहा। लेकिन पन्द्रहवीं सदी की अन्तिम तिहाई और सोलहवीं सदी के अधिकांश हिस्से के दौरान होने वाली और कृषि क्रान्ति ने फार्मर को उतनी ही तेज़ी से समृद्ध बनाया जितनी तेज़ी से खेतिहर आबादी को दरिद्र बनाया। सामूहिक भूमि के अपहरण, आदि, ने उसके मवेशियों की तादाद में लगभग बिना किसी लागत के उल्लेखनीय वृद्धि करना संभव बनाया, और मवेशियों से उसे कृषि-योग्य भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए और भरपूर खाद मिली।

सोलहवीं सदी में एक निर्णायक कारक उसके साथ महत्वपूर्ण रूप से जुड़ गया। उन दिनों फ़ार्मों के पट्टे लंबी अवधि, अक्सर निन्यानबे वर्षों के लिए, लिखे जाते थे। बहुमूल्य धातुओं के मूल्य में लगातार जारी गिरावट और उसकी वजह से मुद्रा के मूल्य में आयी कमी से फार्मर की चाँदी हो गई। मुद्रा के अवमूल्यन ने मज़दूरी में गिरावट के पूर्व उल्लिखित कारणों को और अधिक बल दिया। इस प्रकार जो पहले मज़दूरी हुआ करती थी, उसका एक हिस्सा अब फ़ार्म के मुनाफ़े में जुड़ गया। अनाज, ऊन, मीट और संक्षेप में कहें तो सभी कृषि उत्पादों की क़ीमत में हुई निरंतर वृद्धि से फार्मर की मुद्रा पूँजी बिना किसी यत्न के ही बढ़ गई, जबकि उसे जो लगान देना था वह चूँकि अवमूल्यित मुद्रा में मापा जाता था इसलिए उसमें निरंतर कमी आयी। इस प्रकार फार्मर अपने मज़दूरों और अपने भूस्वामी दोनों की क़ीमत पर समृद्ध हुआ। ऐसे में यह यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सोलहवीं सदी के अन्त तक इंग्लैण्ड में समृद्धशाली ''पूँजीवादी फार्मरों'' का एक वर्ग पैदा हो चुका था।

...हालाँकि खेत जोतने वालों की संख्या कम हुई, लेकिन फिर भी ज़मीन की पैदावार पहले जैसी ही थी क्योंकि संपत्ति संबंधों में व्यापक बदलाव के साथ ही साथ अधिक सहयोग, उत्पादन के साधनों के अधिक संकेन्द्रण आदि द्वारा खेती की बेहतर पद्धति प्रयोग में आ चुकी थी। ऐसा इसलिए भी हुआ क्योंकि खेतिहर मज़दूरों को न सिर्फ़ अधिक सघन काम के लिए प्रोत्साहित किया गया बल्कि लगातार बढ़ती हद तक उन्हें उत्पादन के उन क्षेत्रों से वंचित किया गया जिसमें वे खुद के लिए काम कर सकते थे।

इस प्रकार जब खेतिहर आबादी का एक हिस्सा ज़मीन से मुक्त कर दिया गया तो ज़मीन पर काम करने वाले मज़दूर के रूप में उन्हें जिन जीवन निर्वाह के साधनों से पोषित किया जाता था वे उनसे भी मुक्त हो गये। जीवन निर्वाह के वे साधन परिवर्तनशील पूँजी के भौतिक तत्वों में बदल गये। *किसानों को, जिनका संपत्तिहरण किया जा चुका था और जो दर-दर भटकने के लिए छोड़ दिये गये थे, अब अपने नये मालिक, औद्योगिक पूँजीपति, से प्राप्त मज़दूरी के रूप में इन साधनों का मूल्य खरीदना पड़ता था।* जो जीवन निर्वाह के साधनों के साथ हुआ वही कच्चे मालों के साथ हुआ जो कृषि के उत्पादन के साधन थे। वे स्थिर पूँजी के एक तत्व में रूपान्तरित हो गये।

...चरखे और करघे जो पहले पूरे ग्रामीण क्षेत्र में बिखरे होते थे, अब कुछ बड़े श्रम-बैरकों में एकत्रित कर दिये गये, और इसी प्रकार मज़दूर व कच्चे माल भी एकत्रित किये जाने लगे। उस समय से चरखे और करघे, जो पहले कताई और बुनाई करने वाले लोगों के स्वतंत्र अस्तित्व के साधन हुआ करते थे, कताई और बुनाई करने वाले लोगों को नियंत्रित करने एवं उनसे अवैतनिक श्रम निचोड़ने के साधन में रूपांतरित हो गये।

आदिम संचय: औद्योगिक पूँजीपति की उत्पत्ति -1

औद्योगिक पूँजीपति की उत्पत्ति की प्रक्रिया फार्मर की उत्पत्ति से कम धीमी थी। निस्संदेह शिल्प संघों के कई छोटे मालिक, और उनसे भी अधिक संख्या में स्वतंत्र दस्तकार या यहाँ तक कि उजरती मज़दूर भी छोटे पूँजीपति बने, और बाद में उजरती मज़दूर के शोषण की सीमा का विस्तार करके, और इस प्रकार संचय का विस्तार करके, उनमें से कुछ पूर्ण रूप से विकसित पूँजीपति बन गये। इस पद्धति की घोंघे जैसी चाल किसी भी तरीके से उस नयी दुनिया के बाज़ार की वाणिज्यिक शर्तों के अनुरूप नहीं था जो पन्द्रहवीं सदी के अन्त में हुई भौगोलिक खोजों के बाद बना था। परन्तु मध्ययुग ने बिल्कुल भिन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं के भीतर परिपक्व हुए पूँजी के दो भिन्न रूप दिये, और जिन्हें उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति स्थापित होने के युग से पहले बिना किसी विशेषण के "पूँजी" के नाम से जाना था। मैं बात कर रहा हूँ महाजनी पूँजी और व्यापारिक पूँजी की।

"मौजूदा दौर में समाज की समूची संपदा पहले पूँजीपति के क़ब्ज़े में जाती है...वह भूस्वामी को उसका भाड़ा देता है, मज़दूर को उसकी मज़दूरी देता है, कर तथा दशांश एकत्र करने वालों को उनका पावना देता है, और श्रम की वार्षिक पैदावार का बड़ा हिस्सा, वास्तव में सबसे बड़ा और निरंतर बढ़ता हुआ हिस्सा अपने पास रखता है।

अब पूँजीपति को समुदाय की संपदा का प्रथम स्वामी कहा जा सकता है, हालाँकि उसे इस संपत्ति का अधिकार किसी कानून ने नहीं दिया है...यह बदलाव पूँजी पर ब्याज लगाने की वजह से आया है,...और यह कम विचित्र बात नहीं है कि यूरोप के सभी कानून बनाने वालों ने कानून के द्वारा इसको रोकने की कोशिश की; उदाहरण के लिए सूदख़ोरी के ख़िलाफ़ क़ानून... देश की समूची संपदा पर पूँजीपति का अधिकार संपत्ति के अधिकार में पूर्ण बदलाव है, और यह किस कानून या कानूनों की श्रृंखला के ज़रिये हुआ?''

बेहतर होता यदि लेखक को यह याद होता कि क्रान्तियाँ कानूनों द्वारा नहीं संपन्न की जाती हैं।

सूदख़ोरी और व्यापार से पैदा हुई मुद्रा पूँजी के औद्योगिक पूँजी में रूपांतरण में देहातों में समाज का सामंती ढाँचा और शहरों में शिल्प संघों का संगठन बाधा पैदा करते थे। ये बाधाएँ तब विलुप्त हो गईं जब सामंती समाज विघटित हो गया, जब भूदासता की जंजीरें तोड़ दी गईं, जब देहाती लोगों का संपत्तिहरण किया गया और उन्हें आंशिक रूप से ज़मीन से खदेड़ दिया गया। नये मैन्युफैक्चरर्स बंदरगाहों में या देहात के ऐसे हिस्से में जम गये जहाँ पुरानी नगर व्यवस्था नहीं क़ायम थी और जहाँ शिल्प संघों (जो उस व्यवस्था का हिस्सा थे) का कोई नियंत्रण नहीं था। इसीलिए इंग्लैण्ड में निगमित नगरों और नये औद्योगिक नर्सीरियों के बीच तीखा संघर्ष हुआ।

अमेरिका में सोने व चाँदी की खोज; आदिवासी आबादी का कुछ मामलों में समूल नष्ट किया जाना, और अन्य मामलों में उनको दास बनाया जाना, उनको खानों में ज़िन्दा दफ़ना दिया जाना; ईस्ट इंडीज़ की विजय और लूट का प्रारंभ; अफ्रीका का दास व्यापार के कच्चे माल के रूप में नीग्रो की आपूर्ति करने वाले क्षेत्र में तब्दील हो जाना—ये वे घटनाएँ थीं जो पूँजीवादी उत्पादन के युग के अरुणोदय की अभिलाक्षणिकताएँ थीं। ये वो प्रक्रियाएँ थीं जो आदिम संचय की मुख्य कारक बनीं। उनके ठीक बाद ही यूरोपीय देशों के बीच वाणिज्यिक युद्ध छिड़ा जो भूमण्डल के समूचे क्षेत्र पर लड़ा गया था। उसकी शुरुआत नीदरलैण्ड के स्पेन से अलग होने से हुई; इंग्लैण्ड के जैकोबिन-विरोधी युद्ध में उसने भीमकाय रूप धारण कर लिया; और हालिया संस्करण चीन विरुद्ध अफ़ीम-युद्धों में देखने में आ रहा है (ब्रिटेन ने पहला अफ़ीम युद्ध 1939-1842 में लड़ा और दूसरा 1856-60 में)।

बल-प्रयोग हर उस समाज के लिए बच्चा पैदा कराने वाली धाय माँ का काम करता है जिसके गर्भ में एक नये समाज का अंकुर पल रहा होता है। यह अपने आप में एक आर्थिक शक्ति है।

आदिम संचय: औद्योगिक पूँजीपति की उत्पत्ति -2

डब्ल्यू. होविट, जिन्होंने ईसाई धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया है, ईसाई औपनिवेशिक व्यवस्था के बारे में लिखते हुए कहते हैं:

''तथाकथित ईसाई नस्ल ने दुनिया के हर इलाके में, और हर ऐसी क़ौम पर जिन्हें दबाने में वे सफल हुई है, जितने बर्बर और ख़ौफ़नाक ज़ुल्म ढाये हैं उतने किसी भी अन्य नस्ल ने पृथ्वी पर किसी भी युग में नहीं ढाये हैं, भले ही वे कितने खूंखार, जाहिल एवं दया व शर्म से विहीन क्यों न रहे हों।''

हॉलैण्ड, जो सत्रहवीं सदी के दौरान एक आदर्श पूँजीवादी राष्ट्र था, के औपनिवेशिक प्रशासन का इतिहास ''धोखाधड़ी, घूसखोरी, क़त्लेआम, एवं नीचता के सबसे असाधारण संबंधों में से एक है।'' इसकी प्रमुख विशेषता जावा में इस्तेमाल करने के लिए सेलेबीज़ में दासों का अपहरण करने की प्रणाली थी। इस मक़सद के लिए अपहरणकर्ताओं को ध्यानपूर्वक प्रशिक्षित किया जाता था। इस घृणित व्यापार के मुख्य एजेंट वास्तविक चोर, दुभाषिए, और बेचने वाले होते थे; मुख्य खरीदार देशी राजकुमार हुआ करते थे। अपहृत युवा लोगों को, जब तक कि वे दासों के जहाजों में भेजे जाने के लिए तैयार नहीं हो जाते थे, सेलेबीज़ के क़ैदखाने में रखा जाता था। एक आधिकारिक रिपोर्ट के अनुसार: ''उदाहरण के लिए मैकेस्सर का यह शहर गुप्त कारागारों से पटा हुआ है, जिनमें से हरेक दूसरे से ज़्यादा ख़ौफ़नाक है, जिनमें लोभ और अत्याचार के शिकार उन अभागे लोगों को ठूँसा गया है जिनको जंजीरों से बाँधकर जबरन उनके परिवारों से अलग कर दिया गया है।''

जैसा कि सुविदित है, अंग्रेज़ों की ईस्ट इण्डिया कंपनी का न सिर्फ़ भारत में राजनीतिक शासन पर सर्वाधिकार था, बल्कि चाय के व्यापार का एकाधिकार, आम तौर पर चीन के व्यापार, और यूरोप से मालों के लाने और वहाँ ले जाने का एकाधिकार था। परन्तु भारत के समुद्रतटीय व्यापार एवं द्वीपों के बीच के व्यापार एवं भारत के अंदरूनी व्यापार पर कंपनी के उच्च अधिकारियों का एकाधिकार था। नमक, अफ़ीम, पान एवं अन्य मालों के व्यापार का एकाधिकार संपदा की अक्षय खान जैसा था। अधिकारी अपनी मनमर्जी से क़ीमतें तय करते थे, और अभागे हिन्दुओं को निर्ममता से लूटते थे। इस निजी व्यापार में गवर्नर-जनरल भी भाग लेता था। उसके कृपापात्रों को इतनी अच्छी शर्तों पर ठेके मिलते थे कि वे हवा में हवा में हाथ घुमाकर सोना बना देते थे, आखिर वे कीमियागरों से भी ज़्यादा चालाक जो थे! अपार धन-दौलत कुकुरमुत्तों की तरह पनपने लगी, एक शिलिंग भी पेशगी के रूप में नहीं लगाना पड़ता था और आदिम संचय धड़ल्ले से चल निकलता था। वारेन हेस्टिंग्स के महाभियोग की रिपोर्ट ऐसी मिसालों से भरी है। एक मिसाल देखें।

सुलीवान नामक एक शख्स जब भारत के आधिकारिक मिशन पर जा रहा था तो उसे अफ़ीम का ठेका दिया गया जबकि वह भारत के ऐसे हिस्से में जा रहा था जो उन जिलों से काफ़ी दूर था जहाँ अफ़ीम उगाई जाती थी। इसलिए उसने अपना ठेका बिन नामक शख्स को 40,000 पाउंड में बेच दिया। उसी दिन बिन ने वह ठेका 60,000 पाउंड में किसी और को फिर से बेच दिया। दूसरे खरीदार ने, जिसने उस ठेके को चलाया, बताया कि उसने भारी मुनाफ़ा कमाया। संसद के समक्ष प्रस्तुत एक सूची के अनुसार 1757 और 1766 के बीच कंपनी और उसके कर्मचारियों ने भारतीयों से तोहफ़े के रूप में 60 लाख पाउंड प्राप्त किये। 1769 एवं 1770 में अंग्रेज़ों ने भारत का सारा चावल खरीद लिया और ऊँचे दाम पाये बिना बेचने से इन्कार करके वहाँ अकाल पैदा कर दिया।

ज़ाहिर है कि आदिवासियों के साथ सबसे बुरा बर्ताव मात्र निर्यात व्यापार के लिए लगाये गये बाग़ानों में होता; जैसे वेस्ट इंडीज़; और मेक्सिको एवं भारत जैसे समृद्ध व घनी आबादी वाले देशों में जिन्हें लूट के लिए सौंप दिया गया था। परन्तु तथाकथित वास्तविक उपनिवेशों में भी आदिम संचय अपने ईसाई रूप में अक्षुण्ण था। 1703 में प्रोटस्टेंट मत के गंभीर साधकों, न्यू इंग्लैण्ड के प्यूरिटनों ने अपनी असेंबली के अध्यादेश द्वारा एक आदिवासी को मारकर उसकी खोपड़ी लाने के लिए या उसे ज़िन्दा पकड़ने के लिए 40 पाउंड का ईनाम रखा। 1720 में प्रति खोपड़ी 100 पाउंड पाउंड ईनाम की पेशकश की गई, जब मैसाचुसेट्स-बे ने एक ख़ास कबीले को विद्रोही घोषित किया तो निम्नलिखित

(पेज 15 पर जारी)

क़ीमतों की पेशकश की गई:

''12 वर्ष या उससे अधिक आयु के पुरुषों की खोपड़ी के लिए नई मुद्रा में 100 पाउंड; पुरुष क़ैदी के लिए 106 पाउंड; महिला और बाल क़ैदियों के लिए 50 पाउंड; आदिवासी स्त्री और बच्चों की खोपड़ी के लिए 50 पाउंड।''

कुछ दशकों बाद औपनिवेशिक व्यवस्था ने पवित्र-हृदय तीर्थ यात्रियों की संतानों से बदला लिया जो अब विद्रोही बन चुके थे। अंग्रेज़ों के उकसावे में और अंग्रेज़ों के पैसे की एवज में भाड़े के टट्टू कुल्हाड़ी से उनका सिर कलम करने लगे। ब्रिटिश संसद ने घोषणा की कि उनके पीछे शिकारी कुत्तों को छोड़ना और उनका सिर कलम करना ''ईश्वर एवं प्रकृति द्वारा उनके हाथ में दिये गये साधन हैं''।

आदिम पूँजी संचय: औद्योगिक पूँजीपति की उत्पत्ति-3

औपनिवेशिक व्यवस्था की छत्रछाया में वाणिज्य और नौ-परिवहन ग्रीनहाउस में पकने वाले फल की भाँति विकसित हुए। चार्टर्ड कंपनियाँ पूँजी के संकेंद्रण को प्रोत्साहित करने में मजबूत औजार का काम करती थीं। उपनिवेशों ने उभरते हुए उद्योगों के लिए बाज़ार उपलब्ध कराये, और इस बाज़ार पर एकाधिकार ने संचय को तेज़ किया। यूरोप के बाहर प्रत्यक्ष लूट, दास बनाने और हत्याकाण्डों से प्राप्त संपदा को मातृभूमि की ओर प्रवाहित कर दिया जाता था और उन्हें पूँजी में तब्दील कर दिया जाता था। हॉलैण्ड, जो औपनिवेशिक व्यवस्था को उसकी पूर्णता तक पहुँचाने वाला पहला देश था, 1648 में ही अपनी वाणिज्यिक महानता के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। उसका ''यूरोप के दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के बीच ईस्ट इण्डिया के व्यापार एवं वाणिज्य पर लगभग एकाधिकार था। उसके मत्स्य पालन, उसके समुद्री व्यापार, उसके उद्योगों ने सभी देशों को पीछे छोड़ दिया था। उस गणतंत्र के पास इतनी पूँजी थी कि वह संभवत: शेष यूरोप की कुल मिलाकर जितनी पूँजी होती उससे भी अधिक थी।'' लेखक इसमें यह जोड़ना भूल गया कि 1648 तक आते-आते हॉलैण्ड के आम लोगों पर कामों का बोझ बहुत अधिक था, वे इतने अधिक दरिद्र और अधिक उत्पीड़ित थे जितने कि शेष यूरोप में कुल मिलाकर नहीं रहे होंगे।

नये देवता ने अतिरिक्त मूल्य कमाना ही मानवता का एकमात्र लक्ष्य घोषित कर दिया।

सार्वजनिक ऋण (अर्थात् राष्ट्रीय ऋण) की व्यवस्था, जिसकी शुरुआत मध्ययुग के अन्त के क़रीब जेनोआ और वेनिस से देखी जा सकती है, मैन्युफैक्चरिंग युग में चारों ओर फैल गई। औपनिवेशिक व्यवस्था अपने समुद्री वाणिज्य और व्यापारिक युद्धों के द्वारा अपने विकास और अधिक प्रेरित कर रही थी। यही कारण था कि ऋण व्यवस्था ने सबसे पहले हॉलैण्ड में अपनी जड़ें जमायीं।

राष्ट्रीय क्रेडिट की प्रणाली (अर्थात् राज्य को, चाहे वो निरंकुश हो या संवैधानिक अथवा गणतांत्रिक, बेचने की प्रणाली) ने पूँजीवादी युग पर अपनी अभिलाक्षणिक छाप छोड़ी। तथाकथित राष्ट्रीय संपदा का एकमात्र हिस्सा जो आधुनिक लोगों के सामूहिक आधिपत्य में आता है, वो है उनका राष्ट्रीय ऋण।

इसी के एक अनिवार्य परिणाम के रूप में यह आधुनिक सिद्धान्त आता है कि कोई राष्ट्र जितना ही अधिक क़र्जे में डूबा हो वह उतना ही अधिक समृद्धशाली होता है। सार्वजनिक क्रेडिट पूँजी का ईमान बन जाती है। राष्ट्रीय ऋण की प्रणाली के उभार के साथ-साथ इस संस्था में आस्था की कमी अक्षम्य पाप माना जाने लगता है, 'पवित्र आत्मा' के ख़िलाफ़ पाप।

सार्वजनिक ऋण आदिम संचय के सबसे शक्तिशाली प्रेरकों में से एक बन जाता है। जादुई छड़ी को घुमाने के साथ से ''फण्ड'' बांझ मुद्रा में पुनरुत्पादन की शक्ति भर देता है, और इस प्रकार उसे पूँजी में तब्दील कर देता है, और वह भी बिना उस जोखिम के जो औद्योगिक उपक्रमों में निवेश के साथ और यहाँ तक कि सूदख़ोरी में निवेश के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय ऋण की प्रणाली ने न सिर्फ़ इन माध्यमों से एक काहिल बांडधारक को पैदा किया है; उसने न सिर्फ़ सरकार तथा जनता के बीच बिचौलिए का काम करने वाले वित्त-प्रबंधकों के पास बिना किसी कष्ट उठाये संपदा पैदा की है, उसने न सिर्फ़ कर-वसूली का काम करने वालों का, व्यापारियों को एवं निजी मैन्युफैक्चरर्स को पैदा किया है, जिनके पास प्रत्येक राष्ट्रीय ऋण का एक हिस्सा आकाश से गिरी पूँजी के रूप में मिलने लगता है। इसके अलावा इसने जॉइंट-स्टॉक कंपनियों, तमाम प्रकार की विनिमयशील प्रतिभूतियों की लेनदेन, बट्टे का व्यापार, और संक्षेप में कहें तो शेयर बाज़ार के सट्टे और आधुनिक बैंकपतियों को भी जन्म दिया है।

राष्ट्रीय उपाधियों से विभूषित बड़े-बड़े बैंक प्रारंभ से ही निजी हित में सट्टेबाजी करने वालों के संघ मात्र थे जो सरकारों के पक्ष में खड़े थे और राज्य से प्राप्त होने वाले विशेषाधिकारों की बदौलत वे राज्य को उधार देने की स्थिति में थे। इसीलिए राष्ट्रीय ऋण के संचय का इन बैंकों की शेयर-पूँजी में उत्तरोत्तर होने वाली वृद्धि से अधिक अचूक सूचकांक और कोई नहीं है। इन बैंकों का पूर्ण विकास 1694 में बैंक ऑफ इंग्लैण्ड की स्थापना के साथ हुआ।

आदिम संचय: औद्योगिक पूँजीपति की उत्पत्ति – 4

बैंक ऑफ इंग्लैण्ड ने सरकार को 8 प्रतिशत की दर पर उधार देकर शुरुआत की। साथ ही उसे उसी पूँजी को बैंक-नोटों के रूप में फिर से जनता को उधार देकर मुद्रा में ढालने की अनुमति संसद द्वारा प्राप्त थी। उसको इन नोटों के द्वारा हुंडियाँ भुनाने, मालों के दाम पेशगी देने और बहुमूल्य धातुओं को ख़रीदने की भी अनुमति थी। बहुत समय नहीं बीता कि इस क्रेडिट मुद्रा ने ही, जिसे खुद इस बैंक ने बनाया था, उस माध्यम का रूप ले लिया जिसके द्वारा बैंक ऑफ इंग्लैण्ड राज्य को उधार देता था और राज्य की ओर से सरकारी ऋण का ब्याज अदा करता था। इतना ही पर्याप्त नहीं था कि बैंक एक हाथ से जितना देता था, उससे अधिक दूसरे हाथ से लेता था।

...

विभिन्न क़िस्म के राष्ट्रीय ऋण की उत्पत्ति के साथ ही साथ एक अन्तरराष्ट्रीय क्रेडिट व्यवस्था का भी जन्म हुआ जो अक्सर इस या उस राष्ट्र में आदिम संचय के एक स्रोत को छिपाने का काम करती थी। अत: वेनिस की लूट की प्रणाली हॉलैण्ड की पूँजी संपदा की गुप्त स्रोत थी क्योंकि पतनशील वेनिस ने डच को भारी रक़में उधार दी थीं। ऐसे ही संबंध हॉलैण्ड और इंग्लैण्ड के बीच थे। अठारहवीं सदी के प्रारंभ होते-होते डच उद्योग-धंधे अपने मुख्य प्रतिद्वंद्वी से काफ़ी पिछड़ चुके थे, वह प्रमुख वाणिज्यिक और औद्योगिक राष्ट्र नहीं रह गया था। इसलिए 1701 से 1776 के बीच डच व्यापार का एक मुख्य व्यवसाय विशेषकर अपने प्रमुख प्रतिद्वंद्वी इंग्लैण्ड को पूँजी की बड़ी रक़में उधार देना था। आज इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच भी ऐसा ही सिलसिला चल रहा है।

आज जो पूँजी बिना किसी जन्म-प्रमाणपत्र के संयुक्त राज्य अमरीका में प्रकट हो रही है, वह कल तक इंग्लैण्ड में बच्चों के पूँजीकृत रक्त के रूप में विद्यमान थी।

चूँकि राष्ट्रीय ऋण को सार्वजनिक राजस्व से सहारा मिलता है, जिसे ब्याज के वार्षिक अदायगी के लिए आवश्यक रक़म प्रदान करना होता है, इसलिए आधुनिक कर-प्रणाली राष्ट्रीय ऋण प्रणाली की आवश्यक पूरक है। ऋणों ने करदाताओं पर तात्कालिक रूप कोई नया बोझ डाले बिना सरकार के लिए असाधारण खर्च वहन करना संभव बनाया; परन्तु इस लाभ के बदले अन्तत: उच्च कर देने पड़ते हैं। वहीं दूसरी ओर, एक के बाद एक ऋण लेते जाने से ऋण के संचय के कारण करों में वृद्धि सरकार के लिए नये असाधारण खर्चों को वहन करने के लिए बार-बार नये ऋण लेना आवश्यक बना देती है।

आधुनिक राजकोषीय प्रणाली, जिसकी धुरी चूँकि जीवन-निर्वाह की अत्यंत आवश्यक साधनों पर कर लगाने पर टिकी होती है (और इस तरह उन्हें महँगा बनाने पर), इसलिए उसके भीतर ही उसके स्वत: बढ़ते जाने की प्रवृत्ति निहित होती है। अत्यधिक कराधान अब कोई आकस्मिक चीज़ न होकर एक सिद्धान्त बन चुका है। हॉलैण्ड में, जहाँ यह प्रणाली सबसे पहले लागू की गई, विख्यात देशभक्त दे विट ने अपनी रचना मैक्सिम्स में इस प्रणाली को मज़दूरों को दब्बू बनाने, मितव्ययी बनाने, परिश्रमी बनाने और उन्हें उनके ऊपर कमरतोड़ श्रम को बोझ लादने के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रणाली के तौर पर महिमामंडन किया था। हालाँकि यहाँ पर हमारा सरोकार अत्यधिक कराधान से मज़दूरों की स्थिति पर पड़ने वाले विनाशकारी प्रभावों पर उतना नहीं है जितना कि इस पर है कि किस तरह से इसका परिणाम किसानों, दस्तकारों, या संक्षेप में कहें तो निम्न मध्यवर्ग के जबरन संपत्तिहरण के रूप में सामने आता है...

अत्यधिक कराधान की संपत्तिहरण की कार्य-क्षमता संरक्षण की प्रणाली के कारण और भी बढ़ जाती है, जो कि इसका अभिन्न अंग होती है।

संरक्षण की प्रणाली कारख़ानेदारों को निर्मित करने, स्वतंत्र कारीगरों का संपत्तिहरण करने, उत्पादन और जीवन-निर्वाह के राष्ट्रीय साधनों का पूँजीकरण करने और मध्ययुगीन उत्पादन-प्रणाली तथा आधुनिक उत्पादन-प्रणाली के बीच के संक्रमणकाल को जबरन छोटा करने की एक धूर्तता भरी तरकीब थी। यूरोप के कई राज्यों के बीच इस आविष्कार के पेटेंट के लिए होड़ मच गई थी। जैसे ही इन राज्यों ने अतिरिक्त मूल्य बनाने वालों की सेवा करना स्वीकार किया, वे अपने खुद के लोगों को लूटने से संतुष्ट नहीं रह सके, अप्रत्यक्ष तौर पर संरक्षण-कर लगाकर और प्रत्यक्ष तौर पर निर्यात पर प्रीमियम देकर और ऐसे ही अन्य तरीकों से। निर्भर पड़ोसी देशों में उद्योग-धंधे जबरन उजाड़ दिये गये, उदाहरण के तौर पर जो हश्र इंग्लैण्ड के शासन के तहत आयरलैण्ड के ऊन निर्माताओं का हुआ...

आदिम संचय: औद्योगिक पूँजीपति की उत्पत्ति – 5

औपनिवेशिक व्यवस्था, राष्ट्रीय ऋण प्रणाली, एवं करों का भारी बोझ, संरक्षण, वाणिज्यिक युद्ध आदि, तथाकथित मैन्युफैक्चरिंग काल की इन सभी संतानों का बड़े पैमाने के उद्योग की बाल्यावस्था के दौरान प्रचुर मात्रा में विकास हुआ। बड़े पैमाने के उद्योग के जन्म का जश्न निर्दोषों का क़त्लेआम करके मनाया गया था; या फिर उसके पूरक यानी बच्चों के व्यवस्थित अपहरण करके...

''डर्बीशायर, नॉटिंघमशायर की काउंटियों में और विशेषकर लंकाशायर में नवआविष्कृत मशीनें ऐसी नदियों के तट पर निर्मित बड़ी फैक्ट्रियों में इस्तेमाल की गईं जो पनचक्की चलाने में सक्षम थीं। शहरों से दूर इन स्थानों पर यकायक हज़ारों मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी, विशेष रूप से लंकाशायर में जो उस समय तक बहुत कम आबादी वाला और उजाड़ स्थान था, आबादी ही एकमात्र चीज़ थी जिसकी अब उसको ज़रूरत थी। चूँकि उस समय सबसे अधिक माँग छोटी और फुर्तीली उँगलियों वाले बच्चों की हुआ करती थी, इसलिए तत्काल ही लंदन, बर्मिंघम एवं अन्य स्थानों के सार्वजनिक मुहताज़-ख़ानों से शागिर्द बच्चों को मँगवाने की प्रथा प्रचलित हो गई। सात वर्ष से लेकर तेरह-चौदह वर्ष तक की आयु के हज़ारों बदनसीब बच्चों को उत्तर में काम करने के लिए भेज दिया गया। मालिक कारख़ानेदारों के संरक्षण में रखे गये इन निरपराध और मित्रहीन प्राणियों के साथ अत्यंत हृदयविदारक क्रूरताएँ की जाती थीं; उनसे इतना अधिक काम लिया जाता था कि वे मौत के कगार तक पहुँच जाते थे, ... उनको कोड़ों से मारा जाता था, जंजीरों से जकड़कर रखा जाता था क्रूरता के नये तरीके ईज़ाद करके यातनाएँ दी जाती थीं;... कई मामलों में उन्हें काम के समय कोड़ों से पीटे जाते समय इतना भूखा रखा जाता था कि उनकी हड्डियाँ दिखने लग जाती थीं... और कुछ मामलों में तो उन्हें आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया जाता था।... लोगों की निगाह से दूर डर्बीशायर, नॉटिंघमशायर और लंकाशायर की मनोरम रूमानी घाटियाँ दारुण और मनहूस यातनागृहों और बहुतों के लिए वधस्थलों में परिणत हो गयी थीं।

कारखानानेदारों के मुनाफ़े बेशुमार होते थे, लेकिन इससे उनकी भूख संतुष्ट होने की बजाय बढ़ती ही जाती थी, और इसलिए उन्होंने ऐसी तरक़ीब निकाली जिससे ऐसा लगने लगा कि उनके मुनाफ़े बिना किसी सीमा के बढ़ते ही जायेंगे; उन्होंने 'रात में काम करने' की प्रथा शुरू की, जिसमें दिनभर काम करने के बाद मज़दूरों के एक समूह के थकने के बाद उनके पास रातभर काम करने वाले मज़दूरों के दूसरे समूह उपलब्ध रहा करते थे। ...''

मैन्युफैक्चरिंग के काल में पूँजीवादी उत्पादन के विकास होने के साथ ही साथ यूरोप की आम राय ने लज्जा और विवेक के अन्तिम अवशेषों को भी खो दिया। राष्ट्रों ने हर ऐसे अनाचार की बेरुखी से डींग हांकी जो पूँजी के संचय के साधन का काम करते थे। उदाहरण के लिए सुयोग्य ए. एण्डरसन के वाणिज्यिक वृत्तांत को पढ़ें। उसमें यह घोषणा की गई है कि यह अंग्रेजों की राजनीतिज्ञता की बड़ी भारी सफलता थी कि यूत्रेख्त की संधि पर हस्ताक्षर करने के समय उन्होंने असिएंतो संधि (दास-व्यापार संबंधी संधि) के द्वारा अफ्रीका और स्पेनी अमेरिका के बीच नीग्रो के व्यापार का अधिकार स्पेन वालों से छीन लिया। इसके पहले वे केवल अफ्रीका और ब्रिटिश वेस्ट इंडीज़ के बीच ही नीग्रो का व्यापार कर सकते थे। इस संधि के द्वारा इंग्लैण्ड को 1743 तक प्रति वर्ष 4,800 नीग्रो स्पेनी अमेरिका भेजने का अधिकार मिल गया। इसके साथ ही इससे ब्रिटिश तस्करी के लिए आधिकारिक आवरण का भी काम किया।

दास व्यापार की बुनियाद पर लिवरपूल एक बड़ा शहर बना क्योंकि दास व्यापार आदिम संचय की एक पद्धति थी।

सूती उद्योग ने इंग्लैण्ड में बाल दासता की शुरुआत करने के साथ ही संयुक्त राज्य की दास प्रथा ने शोषण के एक वाणिज्यिक व्यवस्था में रूपांतरित हो जाने को बढ़ावा दिया। आम तौर पर बात करें तो यूरोपीय मज़दूरों की प्रच्छन्न दासता नयी दुनिया में प्रत्यक्ष दासता का आधारस्तंभ बन गई।

जिस प्रकार औजिए ने कहा था, मुद्रा ''अपने गाल पर एक पैदाइशी निशान लिए हुए संसार में आती है'', उसी प्रकार यह कहना उतना ही सही है कि पूँजी इस संसार में सिर से पांव तक कीचड़ में लिथड़ी हुई और अपने रोम-रोम से खून टपकाती हुई आती है।

— अनुवाद: आनन्द सिंह

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

जीएसटी और अन्य टैक्स नीतियों का मेहनतकशों की ज़िन्दगी पर असर

पिछले कुछ सालों से बडी चर्चा है जीएसटी की। सारा बुर्जुआ प्रचार तंत्र और उसके भाँड अर्थशास्त्री -विशेषज्ञ ऐसा समां बाँधने की कोशिश कर रहे हैं कि जीएसटी लागू होने से अर्थव्यवस्था में बडी तेजी आयेगी, कारोबार में तरक्की होगी और रोजगार के मौके बढेंगे। कुछ छोटे बिन्दुओं को छोडकर सारी बुर्जुआ राजनीतिक पार्टियाँ भी इस पर कमो बेश एक राय हो चुकी हैं और अब सिर्फ एकमात्र शेष मुद्दा उनका आपस का यह द्वंद्व है कि किस को इसके लिये कितना श्रेय मिले। सवाल उठाना लाजिमी है कि आखिर जीएसटी में ऐसा क्या है कि पूरा बुर्जुआ तंत्र इस के लिये एक राय होकर इतना उतावला है और इसका मेहनतकश तबके के जीवन पर क्या असर होगा? इस दृष्टिकोण से इसका अध्ययन-विश्लेषण किया जाना बहुत जरूरी है।

जीएसटी लागू करने और इसके असर को समझने के लिये पहले हमें पूँजीवादी समाज में टैक्स नीति के कुछ मूल बिन्दूओं को समझना होगा। निजी सम्पत्ति पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में राजसत्ता के खर्च को चलाने के लिये उत्पादन, आय, सम्पत्ति, व्यापार, आदि पर कर लगाना शासन व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है। लेकिन यह सिद्धांत भी बुर्जुआ मानवतावादी जनतांत्रिक चिंतन की ही उपज था कि एक क्रमिक (Progressive) कर प्रणाली होनी चाहिये। इसका अर्थ है कि कर की दर आमदनी/सम्पत्ति के बढने के क्रम में बढनी चाहिये। लेकिन यह विचार 20वीं सदी में मजबूत मेहनतकश आन्दोलनों के डर से ही कुछ हद तक लागू हो पाया था। क्रमिक कराधान नीति के अनुसार व्यक्तिगत आयकर की दरें आमदनी के बढते क्रम में होनी चाहिये और कॉर्पोरेट कर भी इसके अनुरूप हो। साथ ही बडी सम्पत्ति पर सम्पत्ति कर और उसके उत्तराधिकार पर एस्टेट ड्युटी भी लगाई गयी। यह कर प्रणाली पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण से मुक्ति तो नहीं पर मेहनतकश लोगों को कुछ तात्कालिक राहत प्रदान करती थी।

लेकिन जैसे ही मेहनतकश जनता के आन्दोलन अपने भटकावों की वजह से कमजोर पडे और पूँजीवादी व्यवस्था का संकट और तेज हुआ, बाकी देशों की तरह भारत में भी शासक वर्ग ने इस क्रमिक कर प्रणाली को बदलना शुरु कर दिया। लगातार परजीवी बनते पूँजीपति वर्ग ने नीति अपनाई करों का बोझ खुद से कमकर ज़्यादा से ज़्यादा पहले से ही शोषित मज़दूर, किसान, निम्न मध्य वर्गीय लोगों पर डालने की। इसके लिये आयकर/कॉरपोरेट कर की उच्चतम दरों को तो जाहिर है कम किया ही गया लेकिन और भी सूक्ष्म/जटिल कदम उठाये गये जो आम जनता को सीधे नजर न आयें लेकिन कर का बोझ अमीर तबके से कम कर गरीब लोगों के सिर पर डाल दें। इन उपायों की विस्तृत चर्चा नीचे है।

आय के कई स्रोत हैं। हालाँकि मेहनतकश लोगों के लिये तो उनकी मज़दूरी या छोटे-मोटे काम-धंधे से होने वाली बचत ही आय का मुख्य स्रोत है लेकिन जैसे-जैसे उच्च आय वर्ग की तरफ बढते हैं उनकी आय में वेतन का हिस्सा बहुत कम रह जाता है और उनकी ज़्यादातर आय आती है ब्याज, लाभांश और पूँजीगत लाभ से। ब्याज हम जानते हैं, लाभांश का मतलब है व्यवसाय के मुनाफे में पूँजी के मालिकों को मिलने वाला हिस्सा और पूँजीगत लाभ का मतलब है किसी सम्पत्ति – जमीन-मकान-शेयर-बॉन्ड्स, आदि – की कीमत में होने वाली बढत से मिलने वाला लाभ। तो चालाकी से परिवर्तन यह किया गया कि आय के इन स्रोतों पर वेतन आदि जैसी आयकर की सामान्य दरें लागू होने के बजाय कम दरें लागू की गई। जैसे लाभांश पर बहुत साल से शून्य आयकर था; अब 10 लाख से ऊपर वाली रकम पर दोबारा लगाया गया लेकिन सामान्य 30% के बाजाय सिर्फ 10%। इसी प्रकार पूँजीगत लाभ पर शून्य, 5, 10 या 20% की दरें है (20% की दर के साथ उसे कम करने के लिये सूचीकरण का उपाय भी साथ ही है)। साथ ही सम्पत्ति कर और एस्टेट ड्युटी तो समाप्त ही कर दी गयी है। इस सबका सीधा नतीजा है कि जहाँ हमें बताया जाता है कि अमीर लोगों पर 30% का आयकर है वहाँ असल में सबसे अमीर लोगों को आपनी आय का लगभग मात्र 10 - 15% ही टैक्स देना होता है, वह भी अगर चोरी न करें तो! अगर कम्पनियों की बात करें तो इस बार के बजट में सरकार ने खुद बताया है कि घोषित 30% की दर के बजाय सबसे बडी कम्पनियाँ सिर्फ 21% की दर से ही कॉर्पोरेट टैक्स का भुगतान करती हैं।

अब बात करें गरीब मेहनतकश जनता पर लगने वाले करों की। कुछ लोग आश्चर्य करेंगे कि क्या गरीब लोग भी टैक्स देते हैं! ऐसा एक दुष्प्रचार समाज में खडा किया गया है कि सिर्फ 4% लोग ही टैक्स देते हैं और गरीब लोग सिर्फ सरकार से सबसिडी पाते हैं। लेकिन यह सच नहीं है – देश के सब लोग टैक्स देते हैं, गरीब से गरीब मज़दूर भी। असल में ऊपर जिन करों की बात हमने की वह हैं प्रत्यक्ष कर यानी जिस पर टैक्स लगा उसने दिया। दूसरे किस्म के कर हैं अप्रत्यक्ष कर जो लगते कम्पनियों/व्यापारियों पर हैं लेकिन जिनको आखिर देता आम नागरिक है क्योंकि वस्तुओं-सेवाओं की कीमतों में इन्हें शामिल कर लिया जाता है! यह है सेल्स्, वैट, एक्साइज, कस्टम्स, सर्विस टैक्स, चुंगी, आदि। तथाकथित आर्थिक सुधारों का एक पहलू इस प्रकार के अप्रत्यक्ष करों को लगाना और बढाना है। कुछ साल पहले 8% से शुरु हुआ सर्विस टैक्स देखते-देखते 15% पहुँच चुका है।

तीसरा पहलू है कर प्रणाली और सामान्य अर्थव्यवस्था में ऐसे नियम बनाना जिससे पूँजीपति तबका अपनी आमदनी/दौलत के एक बडे हिस्से को देश के बाहर ले जा सकें और कोई भी टैक्स न चुकायें। अगर वोडाफोन के मामले पर ध्यान दें तो पहले हच नाम की कम्पनी भारत में अपना मोबाइल कारोबार चलाती थी। फिर उसने यह कारोबार वोडाफोन को बेच दिया लेकिन भारत में स्थित सम्पत्ति की खरीद-बिक्री का यह काम हांगकांग में कर लिया गया और इस तरह लगभग 9,000 करोड रुपये का टैक्स बचा लिया गया। ऐसे ही अन्य बहुत से मामले हैं भारत में कारोबार करते या सम्पत्ति रखते बहुत सारे लोग खुद को दूसरे देशों का निवासी/नागरिक घोषित कर यहाँ शून्य या बहुत कम टैक्स अदा करते है।

अब इस परिस्थिति में देखते हैं जीएसटी को। ऊपर बताये गये अप्रत्यक्ष करों – सेल्स, सर्विस, एक्साइज, चुंगी, वैट, आदि - को मिलाकर अब एक नया कर जीएसटी लगाने का प्रस्ताव है। जीएसटी का एक मकसद तो है पूरे देश के पैमाने पर एक ही टैक्स व्यवस्था लागू करना। इससे पूरे देश में कारोबार करने वाली कम्पनियों को टैक्स के हिसाब व कागजी कार्रवाई में सहूलियत होगी। दूसरे, अभी सभी राज्यों में अलग नियम व कर दरें होने से बडी कम्पनियों को विभिन्न राज्यों के बाजार में कारोबार के लिये स्थानीय कारोबारियों के साथ अलग-अलग तरीके से प्रतियोगिता के लिये तैयार होना पडता है। जीएसटी लागू होने से पूरे देश का बाजार अब एक ही नियमों से संचालित होगा और बडे पूँजीपतियों के लिये इस ऐकीकृत बाजार में अपनी इजारेदारी/नियंत्रण स्थापित करना आसान हो जायेगा। आज बहुत सारी कम्पनियों को राज्यों के भिन्न टैक्स कानूनों के कारण राज्यवार अपने कारोबार को संचालित करना पडता है और कई मामलों में इस हिसाब से कुछ फैक्टरियाँ/गोदाम बनाने की भी जरूरत पडती है। जीएसटी लागू होने से यह जरूरत कम होगी और कुछ स्थानों से ही वह कुशलता से अपना कारोबार चला सकेंगी। कुछ स्थानों पर केन्द्रीकृत बडे कारखानों/गोदामों को चलाने के लिये कम मज़दूरों/कर्मचारियों की जरूरत होगी और वह श्रमिकों के वेतन पर अपना खर्च कम करने की स्थिति में होंगी; मतलब और मुनाफा। यही वजह है कि फिक्की, ऐसोचैम, सीआयीआयी, आदि पूँजीपतियों के संगठन इसके लिये सरकार और राजनीतिक दलों पर भारी दबाव बनाये हुए हैं।

जीएसटी का दूसरा पहलू है जनता पर इसका असर अर्थात ज़्यादा से ज़्यादा वस्तुओं और सेवाओं को करों के दायरे में लाना और इन करों की दर को ऊँचा करना। अभी जीएसटी के लिये 18 से 22% तक की दर की चर्चा सुनने में आ रही हैं अर्थात इसके लागू होने पर ज़्यादातर वस्तुओं-सेवाओं पर इतना कर देना पडेगा। उदाहरण के लिये 100 रुपये का मोबाईल रिचार्ज कराने पर उसका 18 से 22% प्रतिशत जीएसटी में जायेगा। नतीजा, और महँगाई। जिन देशों में पहले जीएसटी लागू हुई है उनमें ज़्यादातर में इसके बाद मुद्रास्फीति/महँगाई में वृद्धि हुई है; और भारत में यह मानने की कोई वजह नहीं कि ऐसा नहीं होगा।

तीसरी बात है कि यद्यपि जीएसटी की दर कहने के लिये सब पर बराबर होगी लेकिन इसका असर अमीर और गरीब लोगों पर बराबर नही होगा। जहां ज़्यादातर गरीब लोग अपनी सारी कमाई से किसी तरह जीवन चलाते हैं तो उनकी पूरी आय पर यह 18 से 22% टैक्स लग जायेगा क्योंकि जीएसटी लगभग सभी वस्तुओं - सेवाओं पर लगेगा। वहीं क्योंकि अमीर तबका अपनी आय का एक छोटा हिस्सा ही इन पर खर्च करता है तो आमदनी के हिस्से के रूप में देखा जाये तो वास्तव में गरीब मेहनतकश लोगों पर ज़्यादा टैक्स और जितना अमीर उतना ही कम!

कुल मिलाकर देखा जाये तो जीएसटी समेत इन टैक्स नीतियों की दिशा है पूँजीपति वर्ग को करों के बोझ से जितना हो सके बचाना और पूँजीवादी राजसत्ता को संभालने का बोझ भी पहले से ही शोषित-पीडित मेहनतकश तबके पर बढाना और उसकी पहले से ही सीमित आय में इस जरिये से और भी कटौती कर देना। इसका नतीजा होगा पूँजीपतियों के हाथ में धन और सम्पदा का और भी ज़्यादा केन्द्रीकरण और मज़दूर वर्ग की जिन्दगी में और भी ज़्यादा तबाही। असल में आज की स्थिति में शासक पूँजीपति वर्ग की वर्तमान व्यवस्था के संचालन में भी सिर्फ एक ही भूमिका रह गयी है – परजीवी जोंक की तरह सिर्फ खून चूसना। इसके सिवा उसका अन्य कोई योगदान नहीं है।

– मुकेश त्यागी

देश के प्राकृतिक संसाधनों को लूट रहे मोदी सरकार के चहेते

पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों की श्रम शक्ति के शोषण पर टिकी होती है और पूँजीवादी दैत्य मज़दूरों का खून पीकर ही जीता है, लेकिन इनकी हवस इतने से ही नहीं मिटती। मुनाफे की अंधाधुंध दौड़ में पगलाए हाथी की तरह ये हर उस चीज़ को कब्ज़े में कर लेना चाहते हैं, जिससे इनका मुनाफा दिन दूना रात चौगुना बढ़ता रहे। 1991 के बाद जबसे उदारवादी नीतियाँ जोर-शोर से शुरू हुई हैं, उसके बाद से ही देश के प्राकृतिक संसाधन पूँजीपतियों को लुटाने की गति तेज़ हुई है।

वैसे तो भारत में बनने वाली अलग-अलग सरकारें पूँजीपतियों की सेवा में तल्लीन रहती हैं। वे इस तंत्र को पुख्ता बनाती हैं जिससे पूँजीपति वर्ग आम जनता का शोषण बेरोकटोक जारी रख सके और देश के तमाम प्राकृतिक संसाधन भी पूँजीपतियों और उनके सेवकों, राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों को लूटने की खुली छूट मिल सके। वे इस बात को साबित करती रही हैं कि सरकारें सिर्फ पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी होती है।

लेकिन मोदी सरकार के सत्ता में आते ही यह गति सरपट दौड़ने लगी। तमाम लोकलुभावन जुमलों और भ्रष्टाचार को किसी भी हालत में बर्दाश्त ना करने का दावा करके सत्ता में आयी मोदी सरकार में बेशर्मी से भ्रष्टाचार जारी है। कोयला, अनेक बेशकीमती खनिज पदार्थ, नदियाँ, जंगल, पहाड़ जैसे प्राकृतिक संसाधन और ज़मीनें सारे नियम-कायदों को ताक पर रखकर कौड़ियों के भाव पूँजीपतियों को लुटाये जा रहे हैं।

इसकी एक मिसाल है भाजपा सांसद हेमामालिनी को मुम्बई के अँधेरी में नृत्य अकादमी खोलने के लिए करोड़ों रुपये की सरकारी ज़मीन मात्र 70 हज़ार रुपये में दे दी गयी और जब सवाल उठने लगे तो महाराष्ट्र के राजस्व मंत्री ने बचाव करते हुए कहा यह ज़मीन आबंटन कोई गलती नहीं, बल्कि सरकारी नीति के तहत किया गया है। यह भी कहा कि अगर हेमा मालिनी से जमीन वापस ली जाती है तो कलाकारों, शिक्षाविदों, पूर्वमंत्रियों, क्लबों और जिमखाना को दिये गये आबंटन भी वापस लेने होंगे।

यानि वे जाने-अनजाने यह साफ़-साफ़ कह गये कि पहले भी तो जनता की संपत्ति औने-पौने दाम पर पूँजीपतियों को लुटायी जाती रही है तो अब यह सवाल क्यों उठाया जा रहा है। और सच ही तो है कि पूँजीपतियों को बेरोकटोक और सस्ते दामों पर जमीन हड़पने में मदद करने के लिए भूमि अधिग्रहण नीति में भी बदलाव किया जा रहा है।

दूसरा वाकया गुजरात की मुख्यमंत्री आनंदीबेन पटेल की पुत्री अनार पटेल और उनके बिजनेस पार्टनर की कंपनी को 422 एकड़ जमीन 92% की छूट पर दिये जाने का है। मालूम हो कि गुजरात सरकार ने 2010 में गीर के आधिकारिक वन क्षेत्र में यह जगह 15 रुपये प्रति वर्ग मीटर की दर से, यानि 115 करोड़ रुपये में 'वाइल्डवुड रिज़ॉर्ट एंव रियल्टीज़ प्रा. लि. को दी। इस जमीन का बाजार मूल्य 125 करोड़ रुपये था। ज्ञात हो कि इस कंपनी में अनार पटेल का भी हिस्सा है। इसके बाद कंपनी ने आसपास की 172 एकड़ कृषि भूमि भी खरीद ली और राज्य सरकार ने कृषि भूमि को व्यावसायिक भूमि में बदलने की इजाज़त भी दे दी। कंपनी को फ़ायदा पहुँचाने के लिए सभी नियमों-कायदों को ताक पर रखकर राजस्व विभाग के सयुंक्त सचिव ने कहा कि राज्य द्वारा लिया गया फैसला बिलकुल सही है और इससे राज्य में पर्यटन उद्योग को बढ़ावा मिलेगा। अनार पटेल भी अपने और सहयोगियों के बचाव में खुलकर सामने आ गयी और "समाजसेवा" पर

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव • सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006